योगविद्या

वर्ष 13 अंक 7
जुलाई 2024

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2024

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: स्वामी शिवानन्द सरस्वती संन्यास दीक्षा शताब्दी समारोह, दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश 2024

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु मार्गदर्शक होते हैं, आध्यात्मिक राजमार्ग पर गुरु ही एकमात्र सहारा होते हैं। ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु गुरु का होना परमावश्यक है। शास्त्र-ज्ञान में निपुण होने के बावजूद भी आप गुरु की सहायता बिना आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।

गुरु तीनों लोकों के प्रकाश-स्तम्भ हैं। वे ज्ञान की जाज्वल्यमान् ज्योति हैं। जो अपने गुरु के प्रति भक्ति-भाव से युक्त होकर उनके चरणों में स्वयं को समर्पित करता है, वही आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने में सक्षम होता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 13 अंक 7 जुलाई 2024
(प्रकाशन का 62 वाँ वर्ष)

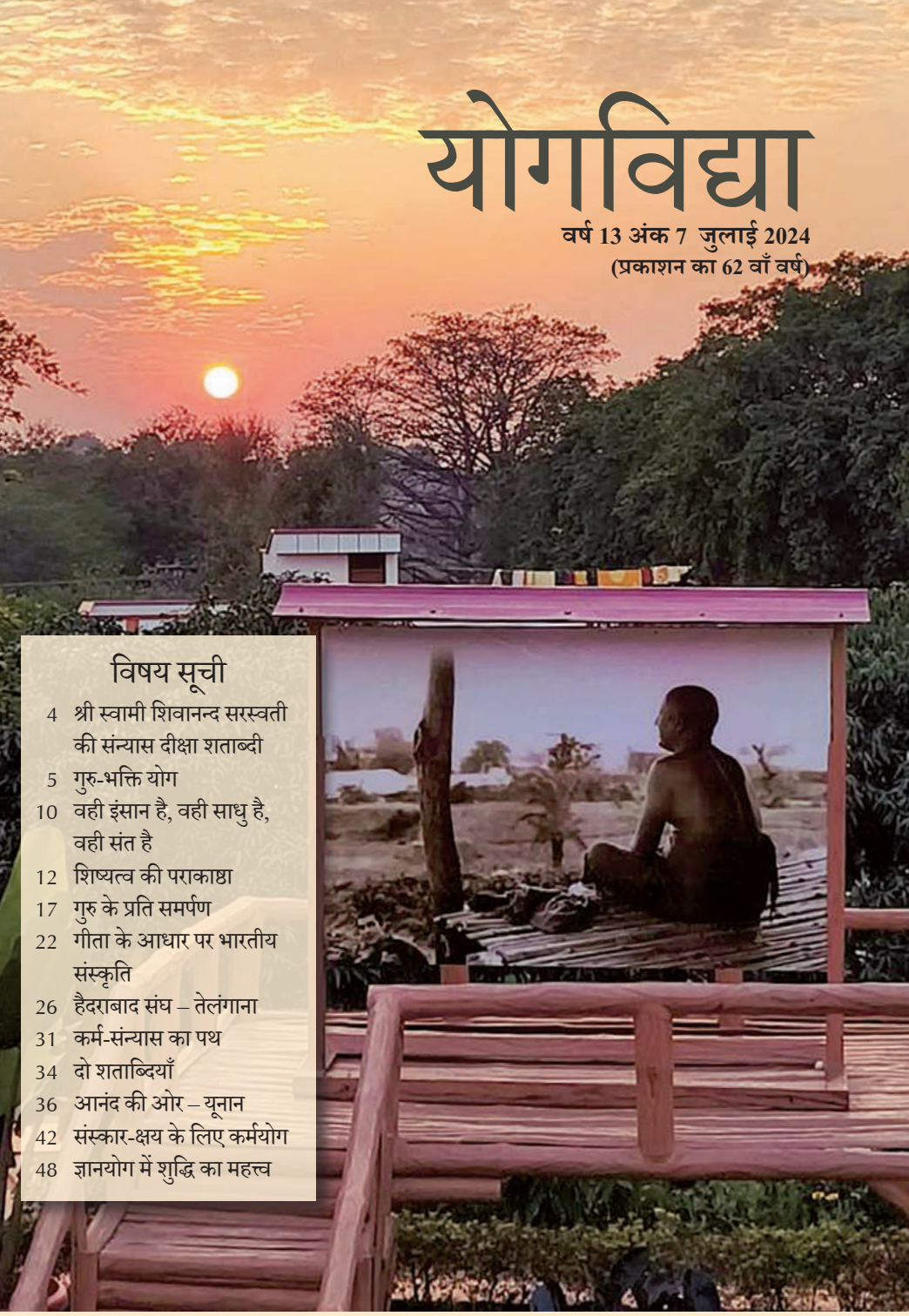

विषय सूची

4 श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती की संन्यास दीक्षा शताब्दी
5 गुरु-भक्ति योग
10 वही इंसान है, वही साधु है, वही संत है
12 शिष्यत्व की पराकाष्ठा
17 गुरु के प्रति समर्पण
22 गीता के आधार पर भारतीय संस्कृति
26 हैदराबाद संघ – तेलंगाना
31 कर्म-संन्यास का पथ
34 दो शताब्दियाँ
36 आनंद की ओर – यूनान
42 संस्कार-क्षय के लिए कर्मयोग
48 ज्ञानयोग में शुद्धि का महत्त्व

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती की संन्यास दीक्षा शताब्दी

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती की संन्यास दीक्षा शताब्दी के शुभ अवसर पर दिव्य जीवन संघ, ऋषिकेश ने 29 मई से 1 जून 2024 तक एक आध्यात्मिक सम्मेलन का आयोजन किया। इस अवसर पर अनेक प्रतिष्ठित संन्यासियों और विद्वानों को संन्यास धर्म पर प्रकाश डालने के लिए आमन्त्रित किया गया था।

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती और स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती ने भी इस विशेष आयोजन में भाग लेने के लिए ऋषिकेश की यात्रा की। 31 मई को स्वामी निरंजनानन्द जी ने अपने उद्बोधन में स्वामी शिवानन्द जी के साथ अपने गहन सम्बन्ध को साझा किया जो स्वामी सत्यानन्द जी की प्रगाढ़ गुरु-भक्ति से अधिकाधिक अभिसिंचित होते गया था।

1 जून को दिव्य जीवन संघ के वरिष्ठ संन्यासियों, स्वामी निरंजनानन्द जी एवं स्वामी सत्यसंगानन्द जी ने गुरु पादुका पूजन सम्पन्न किया। वहाँ उपस्थित सभी भक्तों एवं अतिथियों को भी अभिषेक में भाग लेने का अवसर मिला, जो स्वामी शिवानन्द जी की उदारता और सार्वभौमिक प्रेम की भावना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति थी। कार्यक्रम का समापन विश्वनाथ घाट पर कीर्तन और गंगा आरती के साथ हुआ, जिसे दिव्य जीवन संघ के वरिष्ठ सदस्यों, स्वामी निरंजनानन्द जी और स्वामी सत्यसंगानन्द जी ने सम्पन्न किया।

गुरु-भक्ति योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

जिस प्रकार कीर्तन-साधना कलियुग में ईश्वर-साक्षात्कार की विशेष साधना मानी गयी है, उसी प्रकार मैं आपके लिए यहाँ एक ऐसा योग प्रस्तुत कर रहा हूँ जो संदेह, शंका, अविश्वास और अहंकार से व्याप्त इस युग के लिए विशेष रूप से सुयोग्य है। यह अद्भुत योग है गुरु-भक्ति योग। इसकी शक्ति असीम है और प्रभाव अमोघ।

कठोर राजसिक अहंकार साधकों का सबसे बड़ा शत्रु है। गुरु-भक्ति योग इस अहंकार को नष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय है। जिस प्रकार एक विशेष प्रकार के कीटाणु को खत्म करने के लिए एक विशेष प्रकार की रासायनिक दवा प्रयोग में लाई जाती है, उसी प्रकार अविद्या और अहंकार रूपी रोगों के निवारण के लिए गुरु-भक्ति योग एक अचूक नुस्खा है। इस नुस्खे के प्रयोग से अविद्या और अहंकार क्षीण पड़ जाते हैं और फिर वे साधक को किसी भी प्रकार का कष्ट देने में अक्षम हो जाते हैं। सचमुच धन्य हैं वे लोग जो इस योग को अपनाते हैं, क्योंकि उन्हें अन्य योग मार्गों में भी सिद्धि मिलती है। उन्हें कर्म, भक्ति, ध्यान और ज्ञान योग के सर्वश्रेष्ठ फल स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं।

गुरु-भक्ति योग की साधना

इस योग को अपनाने के लिए केवल तीन गुणों की आवश्यकता है – ईमानदारी, श्रद्धा और आज्ञाकारिता। सबसे पहले अपना लक्ष्य प्राप्त करने के प्रयास में पूरी ईमानदारी से जुट जाओ। आधे-अधूरे और श्रद्धा-रहित प्रयासों से कुछ नहीं होगा। फिर उस व्यक्ति के प्रति, जिसे तुमने अपना गुरु माना है, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखो। शंका या संदेह की परछाई तक अपने पास मत फटकने दो। एक बार जब गुरु के प्रति अपना विश्वास जमा लिया तब हमेशा ऐसा मान कर चलो कि गुरु जो कुछ भी कहते हैं वह तुम्हारी भलाई के लिए ही है। गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन करो। उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारो। इस साधना को अगर ईमानदारी से करोगे तो मैं डंके की चोट पर कहता हूँ, तुम अवश्य अपना लक्ष्य प्राप्त करोगे।

गुरु-भक्ति योग सद्गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण है। इस योग का अभ्यास करने की साधक में निरन्तर और अडिग लालसा होनी चाहिए। साधक को बिना किसी फल की इच्छा रखे गुरु की हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए, उनके चरण-कमलों का प्रतिदिन भाव और भक्ति के साथ पूजन करना चाहिए और तन-मन-धन से गुरु के दिये लक्ष्य में अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए।

गुरु-भक्ति योग अपने आप में एक सम्पूर्ण योग है। साधक के लिए आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश तब तक सम्भव नहीं जब तक वह गुरु-भक्ति योग की साधना नहीं कर लेता। इस जीवन के परम लक्ष्य, आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति तभी सम्भव है जब साधक गुरु-भक्ति योग में पारंगत हो जाए। यह साधना अत्यन्त सुगम्य है जिसके अभ्यास में किसी प्रकार के भय या संकोच को कोई स्थान नहीं है।

गुरु-भक्ति योग का लक्ष्य व्यक्ति को प्रकृति और विषय-भोगों के जंजाल से विमुक्त कर, उसे अपने वास्तविक आनन्दमय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कराना है। गुरु-भक्ति योग मानसिक शान्ति और स्थिरता प्रदान करता है। इस योग का सच्चा साधक अपने अहंकार का निर्मूलन कर, आसानी से इस संसार रूपी दलदल को पार कर जाता है।

हे साधक! सद्गुरु के वन्दनीय चरण-कमलों के समक्ष साष्टांग प्रणाम करो, उनकी पूजा-आराधना करो, उनपर ध्यान करो, उन्हीं की शरण ग्रहण करो और उन्हीं की सेवा में अपना जीवन न्यौछावर कर दो। अपने आपको सद्गुरु के चरणों की धूलि बन जाने दो। यही गुरु-भक्ति योग का गुह्यतम रहस्य है।

गुरु-भक्ति योग विज्ञानों में विज्ञान है। इसका मुख्य सिद्धान्त है गुरु को साक्षात् परमेश्वर के रूप में देखना। गुरु और इष्ट के ऐक्य का अनुभव ही इस सिद्धान्त का व्यावहारिक पहलू है। गुरु-भक्ति योग कोई ऐसी प्रणाली नहीं जिसे व्याख्यान या पत्राचार के माध्यम से सिखाया जा सके। साधक को कई वर्षों तक अपने गुरु की निगरानी और देख-रेख में रहना पड़ता है और अनुशासन, तप, ब्रह्मचर्य और ध्यान युक्त जीवन यापन करना पड़ता है। गुरु-भक्ति योग के अन्तर्गत वे सभी अभ्यास – शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक, सम्मिलित हैं जो आत्म-नियंत्रण और आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं।

गुरु-भक्ति योग अमरता, पूर्णता और शाश्वत शान्ति प्रदान करता है। यह आनन्द के साम्राज्य की कुँजी है। इसके अभ्यास से भय, अविद्या, निराशा, दुविधा, दुःख, चिन्ता, व्याधि और विषाद का नामो-निशान तक नहीं रहता। इससे सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य और अनासक्ति की प्राप्ति होती है। शिष्य अपनी वासनाओं और भावनाओं को नियंत्रित कर, सभी प्रलोभनों का सामना करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। वह अपने मन से सभी व्यवधानों और दुविधाओं को हटाने में सक्षम होकर गुरु-कृपा प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। गुरु-कृपा ही साधक को अंधेरे से उजाले तक लेकर जाती है।

कुछ लोग गुरु-भक्ति को निम्न कोटि का योग मानते हैं। लेकिन वास्तव में यह अन्य सभी प्रकार के योग-मार्गों – कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग इत्यादि का आधार है। गुरु-भक्ति योग, गुरु-सेवा योग, गुरु-शरण योग – ये सभी समानार्थी शब्द हैं। यह योग सभी योग-मार्गों का राजा है। यह वेदों और उपनिषदों की भाँति प्राचीन है। इस मार्ग के द्वार सबके के लिए खुले हैं। इस योग में आचार्योपासना द्वारा गुरु-कृपा प्राप्त करने पर विशेष बल दिया गया है। इस योग का शीघ्र फल योग्य, समर्पित शिष्य को ही मिलता है। गुरु-भक्ति योग सभी मायनों में सर्वोत्तम योग है।

गुरु-भक्ति योग की साधना में मुख्य बाधा शिष्य का अहंकार ही है। इसके अलावा गुरु के पवित्र चरणों में दण्डवत् होने में हिचकना, लोभ, मोह, काम, मद, मात्सर्य, बेईमानी और गलत संगति का होना भी इस मार्ग की प्रमुख बाधाएँ हैं। मन ही इस संसार रूपी वृक्ष की जड़ है। यही सुख और दुःख, बन्धन और मोक्ष का कारण है। इसका नियंत्रण केवल गुरु-भक्ति योग द्वारा सम्भव है।

गुरु-भक्ति योग की महिमा

गुरु-भक्ति योग की महिमा सचमुच वर्णनातीत है। यह योग स्वयं प्रभु को इस धरती पर आपके समक्ष सशरीर उतार सकता है। एक समय की बात है, किसी देश में अच्छे आध्यात्मिक संस्कारों वाला एक व्यक्ति रहता था। वह नियमित रूप से सत्संगों में जाया करता था। वहाँ उसने यह सुना था कि ईश्वर-अनुभूति के लिए गुरु का आशीर्वाद बहुत जरूरी है। उसने तभी से गुरु की तलाश शुरू कर दी। अपनी इस खोज में वह कई साधुओं और संन्यासियों के संपर्क में आया, परन्तु उसे सभी में कोई-न-कोई दोष मिला। उसकी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई थी, उसमें दोष-दृष्टि थी, इसलिए उसे कोई गुरु नहीं मिल पा रहा था। जब तक मनुष्य अपनी बुद्धि और विद्वत्ता के अहंकार का त्याग नहीं करता और एक बच्चे की तरह सहज और सरल नहीं बन जाता तब तक उसे गुरु नहीं मिलता।

एक दिन वह अपने घर में उदास बैठा हुआ था। उसकी पत्नी ने उसकी परेशानी का कारण पूछा तो वह बोला कि उसे अब तक ऐसा गुरु नहीं मिल पाया है जो उसे ईश्वर का मार्ग दिखा सके। *गुरु बिन ज्ञान नहीं* – यदि वह निगुरा ही मर जाएगा तो उसका जीवन व्यर्थ रहेगा। पत्नी ने सलाह दी कि वे दोनों रात को वन में जाएँगे और सड़क के किनारे बैठ जाँएगे। जो भी मनुष्य उस मार्ग से सबसे पहले गुजरेगा, उसे ही अपना गुरु मान लेंगे। उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी की बात मान ली।

अगली रात वे दोनों वन गए और सड़क के किनारे बैठ गए। अचानक वहाँ से चोरी का माल लिए एक घबराया हुआ चोर निकला। पति-पत्नी दोनों तुरन्त उसके पैरों पर गिर पड़े और उसे अपना गुरु मान लिया। वे उससे गुरु मंत्र की प्रार्थना करने लगे।

चोर को यह सब देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन दोनों ने तब उसे अपनी पूरी कहानी बताई। उनकी अपार श्रद्धा को देखकर उसका कठोर दिल भी पसीज गया और उसने अपने बारे में सब कुछ सच-सच बता दिया। फिर भी उस दम्पत्ति ने उसे वहाँ से जाने नहीं दिया और गुरु मंत्र देने का बारम्बार आग्रह किया। चोर को तभी यह अहसास हुआ कि उसने अगर जरा भी देर और की तो उसका पीछा करने वाले लोग वहाँ आ जाएँगे और वह पकड़ा जाएगा। वहाँ से किसी भी तरह निकलने के लिए, उसने उनसे आँख बंद कर और कान पकड़ कर बैठ जाने के लिए कहा। उसने यह भी कहा कि जब तक

वह न कहे तक तक वे उसी स्थिति में रहें। उन्होंने उसकी बात मान ली और उसकी बताई हुई स्थिति में बैठ गए। वे उस स्थिति में पूरी रात और अगले दिन तक बैठे रहे। उन्होंने भोजन और जल तक नहीं लिया। इस दौरान चोर पकड़ा गया और उसे जेल में डाल दिया गया।

भगवान विष्णु और देवी लक्ष्मी उस दम्पत्ति की ऐसी अनुपम गुरु-भक्ति और श्रद्धा देखकर बहुत प्रसन्न हुए। देवी लक्ष्मी उनकी नाजुक हालत देखकर व्याकुल हो गयीं और उन्होंने भगवान विष्णु से निवेदन किया कि वे उन्हें दर्शन दें और इस परिस्थिति से मुक्त करें। लक्ष्मी जी की बात मानकर भगवान विष्णु उस दम्पत्ति के सामने प्रकट हुए।

भगवान विष्णु को आया जानकर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए, परन्तु न तो उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और न ही खड़े हुए। भगवान ने उनसे अपनी स्थिति छोड़ने का बहुत अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि अपनी गुरु की आज्ञा के बिना वे ऐसा नहीं करेंगे।

तत्पश्चात् प्रभु ने वहाँ के राजा को सपने में दर्शन दिए और उससे चोर को कारागार से मुक्त करने के लिए कहा। राजा ने सोचा कि शायद वह सपना सच नहीं है, परन्तु जब वह सपना तीन बार आया तब राजा ने चोर को तुरन्त रिहा कर दिया। उसी रात भगवान विष्णु ने चोर को सपने में दर्शन दिए और उससे उस स्थान पर जाने के लिए कहा जहाँ पर वह दम्पत्ति उसकी बताई हुई स्थिति में अभी भी बैठे हुए थे।

रिहा होते ही चोर तुरन्त जंगल की ओर चल पड़ा और उसने उस दम्पत्ति को अपनी आँखें खोलने और खड़े होने के लिए कहा। उन्होंने वैसा ही किया और उसे ईश्वर के आगमन का वृतान्त भी सुनाया। चोर ने भी उन्हें अपने स्वप्न और जेल से रिहा होने के विषय में बताया।

उसी समय एक आकाशवाणी सुनाई दी, 'मैं तुम्हारी गुरु-भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। नित्य भजन, जप और ध्यान करो। मैं तुम्हें पुनः दर्शन दूँगा और इस जन्म और मृत्यु के चक्र से सदा के लिए मुक्ति दिला दूँगा।' उस दिन से चोर ने भी अपना चोरी का काम त्याग दिया और भगवान विष्णु का भक्त बन गया। उस दम्पत्ति ने नित्य साधना और भजन प्रारम्भ कर दिया और अन्ततः वे जीवनमुक्ति की दुर्लभ अवस्था को प्राप्त हुए।

गुरु-भक्ति और गुरु-सेवा से कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। यह सर्वोत्तम पथप्रदर्शक है। गुरु-भक्ति से ही साधक का जीवन सुखमय और सार्थक होता है।

वही इंसान है, वही साधु है, वही संत है

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जंगल के सन्त की आज विश्व को आवश्यकता नहीं; मनुष्य जीवन के सन्त की उसकी मांग है, जो मानव-समाज को पेचीदे मार्ग पर जाने से रोक कर, उसे सीधे और सुगम मार्ग पर ला सके, जिसने मानवता के आत्मकल्याण का पथ खोजा है, जिसका जीवन त्याग और तपश्चर्या से पुनीत हुआ है, जिसके जीवन में गम्भीरतम दार्शनिकता का महनीय आलोक है, जिसका आकर्षण है – भुजबल, संकल्पशक्ति, बुद्धि तथा ज्ञान का अपूर्व समन्वय और जिसका आधार है अपूर्व सेवानुरक्ति और जनहितपरायणता।

उसी को साधु समझो, जिसमें दम्भ न हो, जिसका हृदय क्षमाशील हो, जो न अपने विषय में कहता हो और न कुछ अपने लिए माँगता हो; जो एक क्षण के लिए भी अपनी लोभमयी वृत्तियों को प्रकट नहीं करता; जिसको नश्वर वस्तुओं से प्रेम नहीं, न अविनाशी का विस्मरण – वही साधु है, वही साधु है।

उस साधु और सन्त से हमें कुछ फायदा नहीं, जो केवल एकान्त अथवा कन्दरा में निवास करते हैं। न तो उनका कोई उपयोग है, जो वेद-शास्त्रों में निष्णात हैं या महान् उपदेशक हैं या जो ईश्वरत्व प्राप्त कर एकान्तवास में सुशान्त बैठे हुए हैं, क्योंकि उनके लिए संसार माया है और बन्धन। आत्मज्ञानी के लिए भी क्या संसार बन्धन है? *'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'* का जिसने साक्षात्कार किया है, वही साधु, सन्त और योगी है।

योगी की विचित्र, अत्यन्त रहस्यपूर्ण, वृथा वेशभूषा से संसार भर गया है। क्षीणकाय, अर्द्धनग्न, जटा-जूटयुक्त, विभूति-सम्मित और पद्मासन में बैठे हुए योगी को वंश-परम्परा से चित्रित किया है। यह योगी का सच्चा स्वरूप नहीं है। अशिक्षा-पीड़ित भारत में फैली हुई इस अन्ध-परम्परा का खण्डन और विनाश किये बिना विश्राम नहीं लेना चाहिए।

सन्त का मानस सदा प्रेम, परमार्थ और परहित का विचार करता है। परमेश्वर का चिंतन उसका स्वभाव है। पवित्रता की देवी उसके मानस की अधिष्ठात्री है। सन्त के पवित्र और दैवी विचार उसके मुखारविंद पर प्रतिबिम्बित होते हैं, उसके उपदेश में प्रतिमुखरित होते हैं। उसके सामान्य संवाद में भी उसकी सत्यता और पवित्रता झलक उठती है। सन्त के विचार

उसके वाणी और वर्तन में प्रतिबिम्बित होते हैं। उसका प्रत्येक कार्य प्रेम, पवित्रता और सात्त्विक भावों से छलक उठता है। उसकी अपूर्व आत्मशक्ति का हमें प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

वही सन्त है जिसने समस्त विश्व को अपना कुटुम्ब माना है। वही सन्त है जो जीवन को जान और पहचान कर जीवनयापन कर रहा है।

वह सन्त नहीं है, जिसका संतत्व बाह्य आडम्बर है, जिसकी सेवा की नींव स्वार्थ है, जिसकी महानता और पवित्रता लोगों को दिखाने के लिए एवं नाम-कीर्ति प्राप्त करने के हेतु है। वही साधु है, वही सन्त है, जो स्वयं अपने लिए महान् है, जिसका प्रत्येक सेवाकार्य लोकसंग्रह के लिए होने पर भी जो मानता है कि वह सब कुछ केवल स्वयं के विकासार्थ है।

वह इसलिए सन्त नहीं कहलाता क्योंकि वह लोकसेवा करता है। उसकी आवश्यकता अत्यन्त अल्प होने के कारण भी वह महान् नहीं कहलाता। वह महान् इसलिए है कि 'भला बनना और भलाई करना' अब उसका स्वभाव बन गया है। उस सन्त को सब इसलिए पूजते हैं कि वह स्वप्न में भी किसी का अहित नहीं चाहता।

– योग-वेदान्त के सितम्बर 1955 अंक से साभार उद्धृत

शिष्यत्व की पराकाष्ठा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

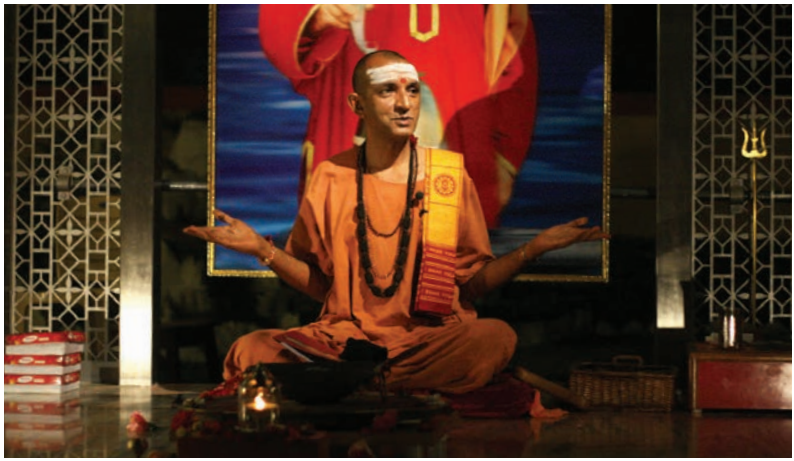

जब हम अपने गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के बारे में सोचते हैं, तब उनके जीवन में एक विलक्षणता हमको स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है और वह है उनका शिष्यत्व। यह विलक्षणता बहुत ही कम लोगों में देखने को मिलती है। चेले बहुत बनते हैं, ठेले भी बहुत बनते हैं, ढेले भी बहुत लोग बनते हैं, लेकिन शिष्यों की संख्या इस संसार में बहुत कम है। आजकल लोग कह देते हैं, 'मैंने अमुक गुरु से दीक्षा ली है, मैं उनका शिष्य बन गया हूँ, लेकिन हमारी परम्परा में शिष्य की यह परिभाषा नहीं है।

किसी गुरु के चेले बन जाओ तो क्या उसके शिष्य कहलाओगे? नहीं। जब किसी गुरु के चेले बनते हो, तब स्नातक कहलाते हो, शिष्य नहीं, और जब गुरु की शिक्षा को आत्मसात् कर लेते हो, तब शिष्य कहलाते हो, विद्यार्थी अथवा स्नातक नहीं। अतः इस परम्परा के अंतर्गत शिष्यत्व का अर्थ होता है, अपने आपको गुरु के साथ एकाकार कर लेना। स्वयं को गुरु के साथ एकाकार करना, यह कोई दार्शनिक विषय नहीं, यह कोई विशेष आध्यात्मिक चिन्तन भी नहीं, बल्कि यह तो शिष्य के जीवन की सरलता एवं सहजता है, जो समर्पण के रूप में प्रकट होती है। और जब समर्पण के रूप में सहजता एवं सरलता प्रकट हो जाए, तब शिष्य गुरु के दृष्टिकोण को अपना दृष्टिकोण

मानता है, गुरु के प्रयोजन को अपना प्रयोजन मानता है, गुरु के लक्ष्य को अपना लक्ष्य मानता है, गुरु की जीवन शैली को अपनी जीवन शैली बनाता है, गुरु के आदर्श को अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करता है, गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात् करने का प्रयास करता है, और अपनी सभी इच्छाओं, कामनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं एवं वासनाओं का त्याग कर देता है।

हजारों लोग दीक्षा लेते हैं, लेकिन गुरु कुछ ही लोगों को शिष्य रूप में स्वीकार करता है। और शिष्य रूप में उन्हें ही स्वीकार करता है, जो गुरु के दृष्टिकोण, मानसिकता और कर्मों को अपना चुके हैं।

देखा जाए तो संसार में शिष्य भी दो प्रकार के होते हैं। एक होता है स्वार्थी और दूसरा होता है निःस्वार्थी। स्वार्थी शिष्य गुरु को अपने प्रयोजन के लिए, अपने नाम, यश और कीर्ति के लिए अपनाते हैं। अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए गुरु की कृपा की खोज करते हैं और गुरु को दुःखों से निवृत्त होने का माध्यम बनाते हैं। इसमें कोई गलती नहीं है। सब ऐसा करते हैं, क्योंकि यह हमारे जीवन की आवश्यकता हो सकती है। इसमें मैं दोष नहीं देखता हूँ, लेकिन इस प्रक्रिया में गुरु से हमारा स्वार्थपूर्ण सम्बन्ध रहता है – हमारे जीवन में जो अभाव है, गुरु उसे पूरा करें। हमारे जीवन में जो कष्ट है, गुरु उसका निवारण करें। हमारे जीवन में जो सामर्थ्य है, गुरु उसको और प्रतिष्ठित करें, अर्थात् अपने को आगे लाने के लिए हम गुरु को माध्यम बनाते हैं। लेकिन सच्चा शिष्य वह होता है, जो गुरु को अपने स्वार्थ का हेतु नहीं बनाता, बल्कि अपने स्वार्थ का त्याग कर गुरु से एकाकार हो जाता है।

रामकृष्ण परमहंस के अनेक शिष्य थे, लेकिन जब वे स्वामी विवेकानंद जी को देखते हैं, तो उनके मुख से अनायास ही वाक्य निकल पड़ता है, 'मुझे तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी।' कितने सारे शिष्य बने, लेकिन उन्हें प्रतीक्षा थी एक की। और जिसकी प्रतीक्षा थी, उसका जीवन आप देखो, उसने क्या कर दिखाया! अपनी दृष्टि को गुरु की दृष्टि से जोड़ दिया, अपने मन को गुरु के मन के साथ जोड़ दिया, अपने व्यवहार को गुरु के व्यवहार के साथ जोड़ दिया, अपनी इच्छा को गुरु की इच्छा के साथ जोड़ दिया, अपने कर्म को गुरु के कर्म के साथ जोड़ दिया। अपना स्वार्थ कुछ शेष नहीं रहा, और अंत में वे बन जाते हैं एक आदर्श प्रेरक, एक आदर्श शिष्य।

इसी प्रकार, अपनी परम्परा में हमारे गुरुजी हैं, जिन्होंने अपनी सभी इच्छाओं का त्याग कर, अपना जीवन पूर्णरूपेण अपने गुरुजी को समर्पित

कर दिया। अपने लिए फिर कुछ भी चाह नहीं रही, और इस प्रकार समर्पित किया कि गुरु का दृष्टिकोण उनका दृष्टिकोण हो गया, गुरु की भावना उनकी भावना हो गयी, गुरु का आदर्श उनका आदर्श हो गया, गुरु का आचरण उनका आचरण हो गया, और गुरु का कर्म उनका कर्म हो गया, और वे बन गए प्रेरक। जो व्यक्ति इस प्रकार अपने आपको गुरु तत्त्व से एक कर लेता है, वही प्रेरक बनता है। अन्यथा शिष्य प्रेरक नहीं, साधक ही बना रहता है, और जो साधक बनता है, उसका एक ही प्रयोजन होता है कि मुझे कुछ प्राप्त होना चाहिए। साधक हमेशा स्वार्थी होता है। आसन भी करोगे तो किसलिए? अपने शारीरिक कड़ेपन को दूर करने के लिए। उसमें भी स्वार्थ छुपा हुआ है। स्वार्थ के बिना कोई कर्म सिद्ध नहीं होता, लेकिन जो निःस्वार्थ रूप से गुरु तत्त्व से एकाकार हो जाता है, वही शिष्य कहलाता है। और यही गुण हम अपने गुरुजी के जीवन में देखते हैं।

जब स्वामी शिवानंद जी के समीप चेलों का पहला समूह आया, तब उन लोगों में केवल गुरु के साथ रहने की तमन्ना थी, जिनको वे अपना हीरो, आदर्श, ध्येय और आराध्य मानते थे। उनकी एक ही इच्छा थी कि हम उनके साथ रहें। उनकी इस इच्छा ने उनके जीवन को अपने गुरु के प्रति इस प्रकार समर्पित कर दिया कि सुख-दुःख की कोई परवाह नहीं रही, पेट भरा है या खाली, सोये हैं या नहीं, थके हैं या नहीं, सुख है या कष्ट, इन सबकी परवाह

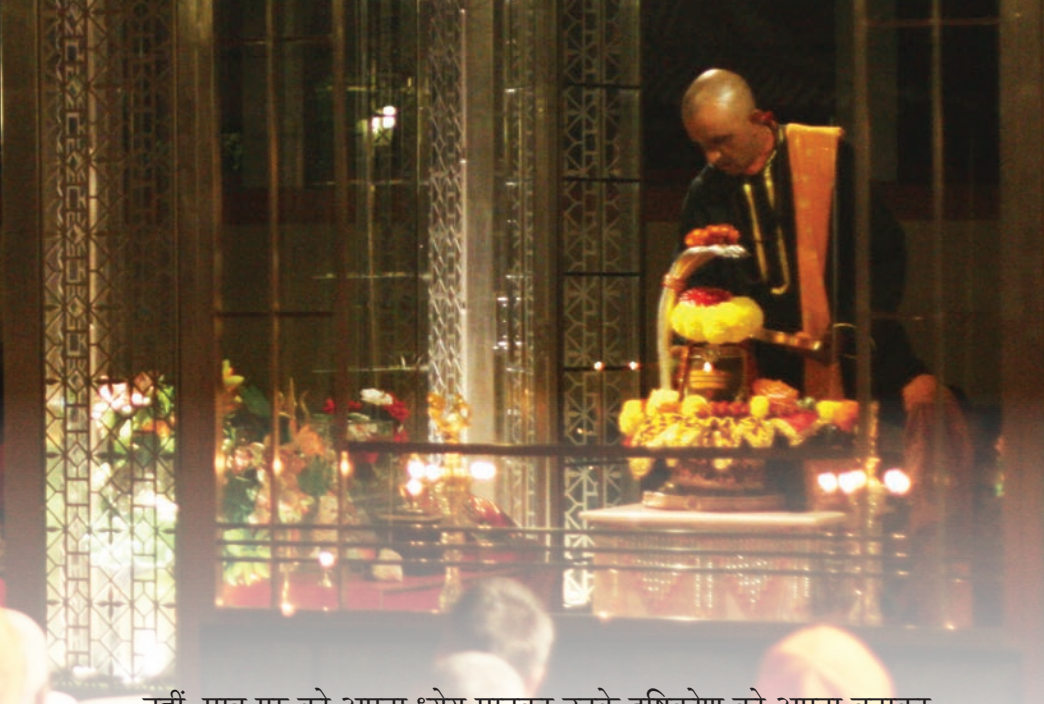

नहीं, मात्र गुरु को अपना ध्येय मानकर उनके दृष्टिकोण को अपना बनाकर वे गुरु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते रहे और अनवरत चलते रहे। वे ही लोग आज समाज के, विश्व के प्रेरक बने हैं।

बहुत-से लोग किसी इच्छा को लेकर गुरु के साथ रहते हैं, लेकिन कुछ लोग गुरु के साथ स्वतंत्र रूप से भी रहते हैं। जो गुरु के साथ इच्छा को लेकर रहता है, वह कुछ दिनों के बाद अपना रास्ता तय करता है। घड़ी देखता रहता है कि मेरे बारह साल कब पूरे हों, और मैं यहाँ से जाऊँ। बहुत-से ऐसे भी चेले होते हैं, जो कहते हैं, 'मैं केवल बारह साल के लिए आया हूँ, उसके बाद मैं अपना रास्ता नापूँगा।' ऐसे भी चेले अभी यहाँ उपस्थित हैं, जो हमारे पास संन्यास प्रशिक्षण सत्र में भाग लेने, हुनर सीखने के लिए आए हैं कि संन्यासी को किस प्रकार रहना चाहिए। हमसे कहते हैं, 'स्वामीजी, छः महीने बीत गये, जान लिया कि क्या करना है, संन्यास दे दीजिए ताकि अपना आश्रम खोलने जा सकूँ।' मतलब ऐसे भी लोग होते हैं जो स्वयं को गुरु बनाने के लिए गुरु को एक सीढ़ी के रूप में प्रयोग करते हैं। जब इस प्रकार की मानसिकता से युक्त होकर व्यक्ति अपने आपको शिष्य रूप में घोषित करता है, तब सोच लो कि उसकी अंतिम उपलब्धि क्या होगी?

शिष्य के भीतर की भावना बहुत सरल होती है। एक बार हनुमान जी से किसी ने पूछा कि राम जी के साथ आपका क्या सम्बन्ध है। वे कहते हैं,

'यदि शारीरिक रूप से देखता हूँ, तो मैं रामजी का सेवक हूँ। अगर उनको मन की आँखों से देखता हूँ, तो मैं उनका मित्र हूँ और वे मेरे मित्र हैं। मैं उनको अपनी सभी बातें कह सकता हूँ, और वे मुझे अपनी सभी बातें कह सकते हैं। अगर उनको आत्मिक रूप से देखता हूँ, तो हम दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं, भिन्न नहीं, एक हैं।'

देहबुध्या तु दासोऽहं जीवबुध्या त्वदंशक:।
आत्मबुध्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मति:॥

यही शिष्यत्व की पहचान है। बाह्य रूप से मैं गुरु का दास हूँ। अंतरंग रूप से मैं उनका अनन्य मित्र हूँ, वे मेरी सब बातें जानते हैं, मैं उनकी सब बातें जानता हूँ, मैं उनसे कुछ नहीं छुपाता हूँ, और आत्मिक रूप से वे मेरे भीतर हैं, मैं उनके भीतर हूँ।

हनुमानजी ने अपने आराध्य, अपने इष्ट के साथ सम्बन्ध के बारे में यह जो भाव बतलाया है, यही भाव, शिष्य और गुरु के बीच होता है। यह केवल भाव नहीं, व्यवहार में भी प्रकट होता है। अपने गुरुजी के जीवन में हम यह साक्षात् देखते हैं। अंतिम क्षण तक वे अपने आपको शिष्य रूप में देखते रहे और गुरु उनके इष्ट एवं आराध्य बने रहे। अंतिम क्षण तक स्वामी शिवानन्द जी उनके लिए गुरु रहे, मित्र रहे, सबकुछ रहे। जो सम्बन्ध उनका गुरु के साथ था, वह अन्य किसी शिष्य या व्यक्ति के साथ नहीं बना। जो प्रेम और भाव उनका अपने गुरु के प्रति था, आज तक कोई उसकी थाह नहीं ले सका है। उन्होंने अपने गुरु को अपने भीतर जाग्रत रूप में देखा है।

ऐसे गुरु हम लोगों के प्रेरक हैं। उनका सम्मान करने के लिए हम केवल एक काम कर सकते हैं – अपने स्तर पर जितना संभव हो, उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करना, स्वीकार करना और आत्मसात् करना। इसी में हम लोगों का उत्थान और सुख-शान्ति छुपी है। जो व्यक्ति निःस्वार्थ होकर एक सेवक के रूप में, एक प्रयोजन, एक उद्देश्य के लिए अपने जीवन का बलिदान कर सकता है, उसने निश्चित रूप से हम सब के लिए विशेष आदर्श प्रस्तुत किया है। उस आदर्श को पहचानना और अपनाना, हम शिष्यों का कर्तव्य है। जो शिष्य हैं, प्रयास करें। जो साधक हैं, वे भी धीरे-धीरे शिष्यत्व को प्राप्त करने के लिए प्रयास करें। उसके पश्चात् फिर गुरु-तत्त्व को प्राप्त करने का प्रयास करें।

– 6 मई 2013, गुरु-भक्ति योग आराधना, गंगा दर्शन

गुरु के प्रति समर्पण

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

गुरु के साथ तादात्म्य स्थापित करने हेतु शिष्य को स्वयं को उनके प्रति पूर्णरूपेण समर्पित करना होगा। जब आप अपने आपको पूर्णतः समर्पित करते हैं तो आप गुरु में पूर्णतया विलीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण समर्पण में ही आध्यात्मिक जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है। तब आपके लिये किसी आसन, प्राणायाम या क्रियायोग के अभ्यास की आवश्यकता नहीं रह जाती। चूँकि आपका तो अस्तित्व ही समाप्त हो गया है, इसलिए अभ्यास करेगा कौन?

ऐसा समर्पण कैसे सम्भव होता है? कोई साधक समर्पण के लक्ष्य तक कैसे पहुँच सकता है? वास्तव में समर्पण की कोई विधि, कोई पद्धति नहीं होती। समर्पण के मार्ग पर समर्पण ही एकमात्र विधि है। अन्य मार्गों पर चलने की अनेक विधियाँ तथा तकनीकें हैं। अपनी प्रगति हेतु आपको इन विधियों एवं तकनीकों को अपनाना पड़ता है, किन्तु समर्पण के मार्ग पर किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। यह या तो स्वतः स्फूर्त होता है, या फिर एकदम नहीं होता।

ज्यों ही आप समर्पण की कोई तकनीक अपनाते हैं, यह समर्पण नहीं रह जाता, क्योंकि तब आप एक आवरण, एक धोखा निर्मित कर लेते हैं और जिस क्षण आप एक कपट रच लेते हैं, आप अनुभव से अलग हो जाते हैं। आप समर्पण की प्रक्रिया में पूर्ण रूप से लीन नहीं हो पाते। तकनीकों का उपयोग करने से आपका एक भिन्न व्यक्तित्व कायम रहता है, किन्तु सम्पूर्ण समर्पण की स्थिति में आपका व्यक्तित्व पूर्णतः नष्ट हो जाता है। जैसे ही आप स्वयं से प्रश्न करते हैं कि मैं कैसे समर्पण करूँ, आप समर्पण के उद्देश्य को ही अर्थहीन बना देते हैं। आप अपने आप से यह प्रश्न कैसे कर सकते हैं कि मैं कैसे प्रेम करूँ? या तो प्रेम होगा या नहीं होगा। आप स्वयं को प्रेम करने का प्रशिक्षण नहीं दे सकते। यह एक नैसर्गिक, निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। प्रेम का अर्थ है पूर्णतः खुला, सर्वथा सुभेद्य होना। सच्चे प्रेम में ऐसी कोई भी सुरक्षा व्यवस्था नहीं होती जिससे आप चिपके रहें। आपको प्रेम के लिये सर्वस्व न्योछावर कर देना पड़ेगा।

समर्पण के साथ भी यही बात है। प्रेम और समर्पण में गहरा सम्बन्ध है। वे साथ-साथ चलते हैं; उनमें सह-अस्तित्व होता है। जहाँ प्रेम है, वहाँ समर्पण है। हम सोचते हैं कि हम एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। हम अपने मित्रों, माता-पिता, पति या पत्नी से प्रेम करते हैं। किन्तु क्या वहाँ पूर्ण समर्पण है? जिस व्यक्ति के प्रति आपने स्वयं को समर्पित कर दिया है, क्या उसके सामने आपका अस्तित्व पूर्णतः समाप्त हो गया है? यदि नहीं, तो आपका प्रेम शर्तों एवं सीमाओं में युक्त है, अतः यह प्रेम हो ही नहीं सकता।

गुरु के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में भी शिष्य प्रायः धोखे में रहता है। वह सोचता है कि मैं गुरु से प्रेम करता हूँ तथा उनके प्रति पूर्णतया समर्पित हूँ, किन्तु शर्तें एवं सीमाएँ बनी रहती हैं। उसका प्रेम एक तकनीक होता है तथा समर्पण एक दिखावा। सम्पूर्ण समर्पण की स्थिति में उसके अपने मन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। गुरु से सम्बन्ध के प्रसंग में उसके 'मैं-पन' का लोप हो जाता है। वह पूर्णतः खुला, सुभेद्य और निष्कपट बन जाता है। गुरु के समक्ष उसकी अपनी कोई रुचि, पसन्द या विकल्प नहीं रह जाता। वह एक सेवक, एक दास बन जाता है, उसका सम्पूर्ण अस्तित्व गुरु को ही अर्पित होता है।

ऐसा होने पर ही शिष्य के जीवन में गुरु कृपा की वास्तविक वर्षा होने लगती है, क्योंकि उसने अपने को पूर्णरूपेण रिक्त कर लिया है, ग्रहणशील बन गया है और अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है। अब उसके पास कुछ

नहीं है। वह एक बच्चे के समान समस्त आवरणों एवं सीमाओं से रहित हो गया है। जब गुरु ऐसे शिष्य में शक्ति का सम्प्रेषण करते हैं तो उसके जीवन को पूर्ण रूप से रूपान्तरित कर देते हैं।

समर्पण करना श्रेयस्कर तो है, किन्तु यह आसान नहीं है। यह संसार का सर्वाधिक कठिन कार्य है। आसन, प्राणायाम, जप, क्रियायोग, आदि सहज हैं, क्योंकि उनकी निश्चित विधियाँ हैं। आप कोई भी विधि अपनाने के लिये स्वयं को आसानी से प्रशिक्षित कर सकते हैं, किन्तु समर्पण के लिये कोई विधि, तकनीक या प्रशिक्षण नहीं है।

अब यह प्रश्न उठता है कि शिष्य द्वारा गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण के मार्ग में कौन-सी बाधा और अवरोध है? यह इतना दुःसाध्य क्यों है? हम में से हर कोई अहंकार के दायरे में केन्द्रित रहते हैं। हम 'मैं-पन' के भाव से युक्त होकर अपनी जीवन-यात्रा जारी रखते हैं। यह एक प्रतिरक्षा कवच के समान है, जिसका उपयोग हम अपनी सुरक्षा के लिये करते हैं। व्यक्तित्व की पहचान के भाव के बिना हम स्वयं को निराशाजनक एवं दयनीय ढंग से खोया हुआ अनुभव करते हैं।

पहचान का यह भाव आपके दिन-प्रतिदिन के सांसारिक जीवन में प्रासंगिक हो सकता है, किन्तु गुरु से सम्बन्ध एवं आध्यात्मिक जीवन के प्रसंग में यह सबसे बड़ा अवरोध है। आपके तथा सम्पूर्ण समर्पण के बीच की बाधा यह अहंकार ही है। आपका अहंकार आपको समर्पण करने से रोकता है। आपके अन्दर का अहंकार मरना नहीं चाहता, समर्पण के साथ वह पूर्णतः विकलांग हो जायेगा। अतः सम्पूर्ण समर्पण के खतरों के सम्बन्ध में वह आपको सदैव स्वतः सलाह देता रहेगा। और चूँकि आप 'मैं-पन' के भाव से अत्यधिक मदहोश और पूर्णतः मोहित रहते हैं, अतः आपका अहंकार आपको पराभूत करने में सफल हो जाता है। आप उसके सामने समर्पण कर देते हैं। अतः गुरु के प्रति समर्पण तथा अपने अहंकार के प्रति समर्पण के भावों के बीच निरन्तर संघर्ष चलते रहता है।

यदि आप अपने अन्दर की इस प्रतिरक्षा व्यवस्था के प्रति सजग एवं अहंकार के क्रिया-कलापों के प्रति सचेत हो सकें तो यह स्वतः विघटित और विखंडित होने लगेगा, क्योंकि ज्योंही आप किसी समस्या पर अपनी सजगता को केन्द्रित करते हैं, उसका अपने आप समाधान होने लगता है। सतत् सजगता के द्वारा आप में अन्तर्निहित अहंकार क्रमशः अधिक दुर्बल होता

जाता है और यदि आप इस बात के प्रति बहुत सतर्क रहें कि अहंकार को सशक्त होने का कोई अवसर न मिले तो एक दिन आप अनुभव करेंगे कि आप अस्तित्वहीन हो गये हैं। जैसे ही आप अनुभव करेंगे कि 'मैं नहीं हूँ', आप पूर्णतः समर्पित हो जायेंगे। समर्पण तभी होता है जब आप अहंकार के क्षेत्र का अतिक्रमण कर जाते हैं।

जब आप स्वयं को गुरु को समर्पित करते हैं तो आप एक शून्य गर्त या गहरी खाई के समान हो जाते हैं। आप गहराई प्राप्त करते हैं, ऊँचाई नहीं। इस समर्पण का अनुभव अनेक प्रकार से हो सकता है। गुरु आप के अन्दर प्रकट होने लगते हैं, उनकी शक्ति आप में प्रवाहित होने लगती है। गुरु की शक्ति तो निरन्तर प्रवाहित हो रही है, किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये आपको ग्रहणशील बनना होगा। आपको नीचे उतरना होगा, झुकना होगा। यदि आप उनसे ऊपर रहेंगे तो प्रवाहित होती हुई यह शक्ति आप तक नहीं पहुँच सकेगी। आप इसे प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अतः गुरु के सम्मुख नतमस्तक होइये।

गुरु के प्रति सामान्य समर्पण से भी शक्ति प्रवाहित होने लगती है। अचानक आप उस शक्ति के वाहन बन जाते हैं। हमने ऐसी सैकड़ों कहानियाँ सुनी हैं कि किस प्रकार मात्र एक स्पर्श या दृष्टि से अनेक लोगों को आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ। यह सम्भव है और इतिहास में ऐसा अनगिनत अवसरों पर हुआ है। आपकी आँखों में गुरु की एक दृष्टि पड़ने से भी आपका सम्पूर्ण व्यक्तित्व रूपान्तरित हो सकता है। किन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि आपकी आँखें रिक्त हों, वे दुराग्रहों एवं जटिलताओं से भरी हुई न हों। गुरु की दृष्टि को आत्मसात् करने के लिये आपको रिक्त होना पड़ेगा।

गुरु के सान्निध्य में रहना ही शायद वह एकमात्र उपाय है जिसके द्वारा शिष्य अपने अहंकार के सूक्ष्म क्रिया-कलापों के प्रति सजग हो सकता है। जीवन की अन्य समस्त परिस्थितियों में अहंकार अधिक सशक्त होता है। हम नुकसान, घाटा, दुःख या दुर्दशा को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसके

अतिरिक्त, हम इन कष्टों को स्वीकार करना भी नहीं चाहते, क्योंकि हम किसी के समक्ष समर्पण करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते। हम दूसरों के द्वारा अपना शोषण, दुरुपयोग या कुप्रयोग किये जाने के भय से आतंकित रहते हैं।

किन्तु यदि आप गुरु के साथ रह रहे हैं तो वे निरन्तर आपको समर्पण के लिये तैयार करते हैं। यह उनका कार्य, उनका उत्तरदायित्व है। वे आपके चेतन एवं अवचेतन मन को, अहंकार की शक्ति बढ़ाये बिना, कार्य करने का प्रशिक्षण देते हैं। वे ऐसी परिस्थितियों एवं घटनाओं का निर्माण करते हैं जिससे शिष्य यह समझने में सक्षम होता है कि किस प्रकार उसका अहंकार उस पर पूर्णतः हावी हो रहा है। धीरे-धीरे, समय आने पर, शिष्य अपने तथा गुरु के बीच व्याप्त अहंकार के इस अवरोध के प्रति अधिक सजग हो जाता है।

शिष्य कभी-कभी, थोड़े समय के लिये, अपने अहंकार को वशीभूत करने में सक्षम होता है तथा गुरु के प्रति सामान्य समर्पण का अनुभव करता है। उस समय गुरु के प्रति उसका विश्वास और प्रेम जाग्रत हो जाता है। वह अनुभव करता है कि इस समर्पण के द्वारा उसने कुछ ऐसा प्राप्त किया है जो अविश्वसनीय, आशातीत और अज्ञात है। यह कोई ऐसी बड़ी शक्ति है जिसकी कल्पना उसने स्वप्न में भी नहीं की थी। वह सम्पूर्ण समर्पण के लिये तैयार होता है। किन्तु गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की अनुभूति प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि शिष्य गुरु-आश्रम में निवास करे तथा उन्हें, उसके अहंकार के प्रति आवश्यक व्यवहार करने की अनुमति दे।

शिष्य यह सोचकर प्रायः आशंकित रहता है कि कहीं गुरु उसका शोषण न करें। उसे भय होता है कि यदि वह स्वयं को पूर्ण रूप से गुरु को समर्पित कर देता है तो उसका क्या होगा। क्या गुरु उससे लाभ उठायेंगे, उसके साथ दुर्व्यवहार करेंगे, या उसका दुरुपयोग करेंगे? समर्पण की इच्छा रखने वाले शिष्य के मन में इन सन्देहों के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये। ये असत्य तो हैं ही, साथ ही ये गुरु के प्रति उसके विचारों और कार्यों को पूर्णतः दिग्भ्रमित कर देंगे।

शिष्य को यह अच्छी तरह स्मरण रखना चाहिये कि सम्पूर्ण समर्पण में उसका ही लाभ निहित है। यदि गुरु उसका शोषण भी करना चाहें तो प्राकृतिक नियम समर्पित शिष्य की सुरक्षा करते हैं। शिष्य का शोषण करने वाले तथा उसे धोखा देने वाले गुरु के कर्म उन पर ही प्रतिघात करेंगे और शिष्य पूर्णतः सुरक्षित रह जायेगा। इसके अतिरिक्त, कोई भी गुरु एक सच्चे, लगनशील शिष्य को कदापि नहीं ठगेगा और न उसका शोषण ही करेगा।

गीता के आधार पर भारतीय संस्कृति

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सच्ची संस्कृति आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित होती है। भारतीय संस्कृति ने मनुष्य की अन्तर्निहित दिव्यता को स्वीकारा है। भारतीय सभ्यता आत्म-शक्ति का विकास करके इसी दिव्यता की अभिव्यक्ति पर बल देती है। भारत एक आध्यात्मिक देश है, हर सच्चे भारतीय का लक्ष्य एक है – आत्म-स्वराज्य को प्राप्त करना, अर्थात् आन्तरिक और बाहरी प्रवृत्तियों पर विजय पाकर मनुष्य-जीवन के चरमोत्कर्ष, आत्म-साक्षात्कार को पाना।

भगवद्गीता एक ऐसा सार्वभौमिक ग्रन्थ है, जिसमें भारत की मूल संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। गीता का प्रथम सन्देश अनासक्ति है। आत्मा की अमरता इसका दूसरा सन्देश है और परमात्मा के स्वरूप में एकीभाव होना, अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार इसका तीसरा सन्देश है।

अनासक्ति

अनासक्ति-योग एकता के सिद्धान्त पर आधारित है। श्रीकृष्ण ने कहा है – *मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय* – 'मेरे सिवाय किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है।' सत्य एकता में है। जीवन पर छाने वाले दुःखादि सत्य नहीं, केवल विकल्पाभास मात्र हैं। इसी सत्य को न समझना दुःखों का मूल कारण है। *ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते* – इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण भोग ही सुख-दुःख के हेतु हैं। अनासक्ति से ही सच्चे त्याग और निष्कर्मता का जन्म होता है।

जिन वस्तुओं से मोह उत्पन्न होता है, उनकी अनित्यता को समझ लेने पर ही पूर्ण वैराग्य होना सम्भव है। इसलिए भारत के सन्तों ने भौतिक जगत् की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डाला है। विवेकी पुरुष नाशवान् वस्तुओं से अलिप्त रहकर संसार-रूपी बन्धन से छूटने का प्रयत्न करता है। गीता बतलाती है कि यह जगत् अनित्य है, दुःखों का घर तथा अशाश्वत है। जब इस विवेक का उदय हो जाता है, तब मनुष्य इच्छाओं और आसक्ति से रहित बन जाता है। आत्मा की पूर्णता का अनुभव होने से, बाहरी वस्तुओं की नश्वरता का आभास पाकर, साधक उन नश्वर वस्तुओं के पीछे नहीं भागता।

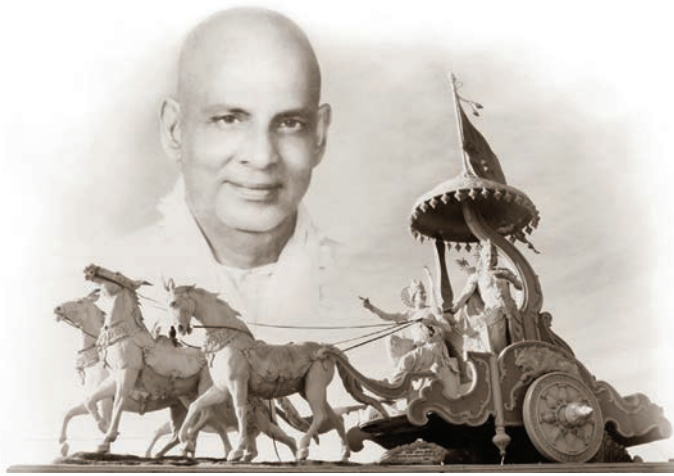

सनातन भारतीय संस्कृति का पर्यायवाची है – धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना का उदय होना। इस चेतना के बिना मनुष्य और पशु में कुछ भी अन्तर नहीं। गीता में सुख और शान्ति को प्राप्त करने के लिए त्याग और निष्काम भाव से कर्म करना ही मुख्य साधन बतलाया गया है। *योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय* – आसक्ति को त्याग कर, योग में स्थित होकर कर्मों को कर। आत्म-पारायण और असंग होकर सब कर्म करते रहने से यहाँ और परलोक में सुख और शान्ति मिलती है। इस निष्काम कर्मयोग-रूप धर्म का थोड़ा भी साधन जन्म-मृत्यु-रूपी महान् भय से उद्धार कर देता है।

आत्मा की अमरता

आत्मा की अमरता का सिद्धान्त और मृत्यु के पश्चात् की स्थिति – ये दो महान् सत्य हैं, जिन्हें भारतवासी कभी नहीं भूल सकते। गीता आरम्भ में ही बताती है कि आत्मा अमर है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥2.20॥

'आत्मा न कभी पैदा होती है, न मरती है, यह अजन्मा और शाश्वत है, शरीर के नाश होने पर भी यह नाश को प्राप्त नहीं होती।' इस महान् सत्य के ज्ञान से बढ़कर और अधिक श्रेष्ठ क्या हो सकता है? यही कल्याणकारी ज्ञान भारतीयों के जीवन का प्राण है। यही ज्ञान मनुष्य मात्र को आश्वासन प्रदान करता है। इसी ज्ञान का साक्षात्कार करना प्राणिमात्र का उद्देश्य है। मानव-जाति के प्रतिनिधि अर्जुन को भगवान कृष्ण ने इसी ज्ञान का साक्षात्कार करने का उपदेश दिया है।

विश्व-धर्म के इतिहास में आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म – ये दोनों भारत के अद्वितीय सिद्धान्त हैं, जो जीवन की सभी जटिल समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। आत्मा की अमरता का सिद्धान्त स्वीकार किए बगैर जीवन की घटनाओं को नहीं समझा जा सकता। कर्म का सिद्धान्त, जो भारतीय दर्शनशास्त्र और धर्म का आधार है, इसी सत्य का उप-सिद्धान्त है।

भारतीय संस्कृति पर आत्मा की अमरता और मनुष्य की दिव्यता की गहरी छाप है। भारत के ऋषि-मुनियों ने अपनी गहन और सूक्ष्म बुद्धि द्वारा आत्मा की अमरता का अपने अन्दर अनुभव किया और संसार में उसका प्रचार किया। हिन्दू भौतिक जगत् को सत्य नहीं मानते हैं। इस अनित्य और क्षणभंगुर संसार में उनकी आस्था नहीं है, बल्कि उनका नित्य-सच्चिदानन्दघन परमात्मा में अटल विश्वास है। उनका लक्ष्य प्रभु को पाना है। यह संसार उस लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन मात्र है।

ईश्वर-साक्षात्कार

गीता एक परम रहस्यमय परन्तु सार्वभौमिक ग्रन्थ है। इस शास्त्र में निहित ज्ञान मनुष्य मात्र के लिए है क्योंकि परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति का अधिकार सभी को है। यहाँ तक कि दुराचारी भी परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥9.30॥

'अतिशय दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।' *मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः* – 'पाप योनि वाले भी मेरी शरण में आकर परम-गति को प्राप्त होते हैं।' मनुष्य के अन्दर मौलिक रूप से पाप का अंकुर नहीं है, क्योंकि उसकी आत्मा सत्-चित्-आनन्द है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥4.37॥

'जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान-रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।' यहाँ ज्ञान का अर्थ नित्य और अमर आत्मा का साक्षात्कार है। जीव को अन्त में ईश्वर का ही स्वरूप बन जाना है। मनुष्य

अपनी इच्छाओं और कर्मों के अनुसार अनेक जन्म ग्रहण करता है और अपने अनुभव द्वारा इस अनित्य संसार की क्षणभंगुरता को समझ कर, ज्ञान और आत्म-त्याग द्वारा मुक्ति पाता है। आत्म-साक्षात्कार के बिना मनुष्य आवागमन के चक्र से छूट नहीं सकता। मनुष्य का ध्येय ही आत्म-साक्षात्कार है। जब तक वह आत्म-स्वरूप को नहीं पहचान लेता, वह भगवान के साथ एक नहीं हो सकता। उस परमानन्द का अनुभव कर्मों के क्षीण हुए बगैर नहीं हो सकता।

गीता का सामाजिक पक्ष

समाज में मनुष्य को अपनी परिस्थितियों के साथ समझौता करना पड़ता है। अपने-अपने विकास के अनुसार मनुष्य को जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रह कर अपने धर्म का पालन करना है। गीता ने गुण और स्वभाव के अनुसार ही मनुष्य के विभिन्न धर्म निर्धारित किये हैं। सब देशों में मनुष्य चार भागों में विभक्त हैं – दार्शनिक सन्त पुरुष, वीर क्षत्रिय, व्यापार में रुचि रखने वाले वणिक और श्रमिक। यह विभाजन कृत्रिमता और स्वार्थ के आधार पर नहीं किया गया है, बल्कि यह मनुष्यों के गुणों और उनकी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार सामाजिक जीवन का सच्चा चित्र सामने रख देता है।

स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म-रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है। यह सामाजिक विभाजन परस्पर प्रेम-सम्बन्ध स्थिर रखता है। एक ही जैसे विचारों के दो मनुष्य नहीं हो सकते और न उनके कर्म ही एक प्रकार के हो सकते हैं। अतः गुणों और कर्मों के अनुसार यह वर्ण-व्यवस्था की गयी। मनुष्यों का सुख उनके शासक की शान्ति पर नहीं, बल्कि समाज की व्यवस्था पर निर्भर रहता है। हर मनुष्य को अपने व्यक्तित्व को विकसित करके अपने चारों ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य फैलाना है। मानव-जाति एक ही सूत्र में पिरोयी हुई है, अतः एक का सुख दूसरे पर निर्भर रहता है। ऋषि-मुनियों की भारतीय संस्कृति को जीवित रखने का श्रेय प्रकृति के अनुसार विभाजित की गयी इस वर्ण-व्यवस्था को ही है।

इच्छा-त्याग और आन्तरिक शान्ति भारतीय संस्कृति की विशेष देन हैं। ज्ञान सिर्फ पाण्डित्य तक ही सीमित नहीं, बल्कि ज्ञान वह है, जिसकी नींव नैतिकता और सदाचार पर अवलम्बित और सुदृढ़ हो। नैतिकता ज्ञान की सच्ची कसौटी है। जीवन के गहनतम और सूक्ष्म सत्य का अनुभव करना ही ज्ञान है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें ऐसे ही दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार कराती है।

हैदराबाद संघ – तेलंगाना

8 सितम्बर को सत्यानन्द योग परम्परा के कुछ शिक्षक एवं सेवक हैदराबाद में एकत्र हुए जहाँ उन्होंने स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव मनाया। उन्होंने गुरु अष्टोत्तरशत-नामावलि के साथ हवन, शिवानन्द गायत्री का पाठ और गुरु एवं कृष्ण कीर्तनों का आनन्ददायक गायन किया।

9 सितम्बर को हैदराबाद संघ ने श्रीनगर कॉलोनी के विवेकानन्द विद्यालय में छठी से दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए योग शिविर प्रारम्भ किया, जिसमें ऐसे अभ्यासों का समावेश किया गया जो बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा एकाग्रता बढ़ाने में मदद कर सकें।

12 सितम्बर, स्वामी सत्यानन्द जी के समर्पण दिवस के शुभ अवसर पर हैदराबाद संघ ने विवेकानन्द विद्यालय, श्रीनगर कॉलोनी के सभी विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं कर्मचारियों के लिए भोज की योजना बनायी और उसे बड़े प्रेम से क्रियान्वित किया।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की जन्मशताब्दी के अवसर पर सत्यानन्द योग केन्द्र, चेन्नई के संन्यासी शिवऋषि एवं अरुणा श्यामसुन्दर द्वारा आयोजित *पादुका अनुग्रह यात्रा* के क्रम में श्री स्वामीजी की दिव्य पादुकाएँ हैदराबाद में 2 दिसम्बर को पहुँचीं। हैदराबाद के सभी शिष्य और भक्तगण 2 और 3 दिसम्बर को इस दिव्य पादुका आराधना में सम्मिलित होकर आत्मविभोर हो गये।

Sannyasa Diksha Centenary Celebration
All India Divine Life Society
Branch Representatives' Meeting &
Conference

DO GOOD
SERVE LOVE MEDITATE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY

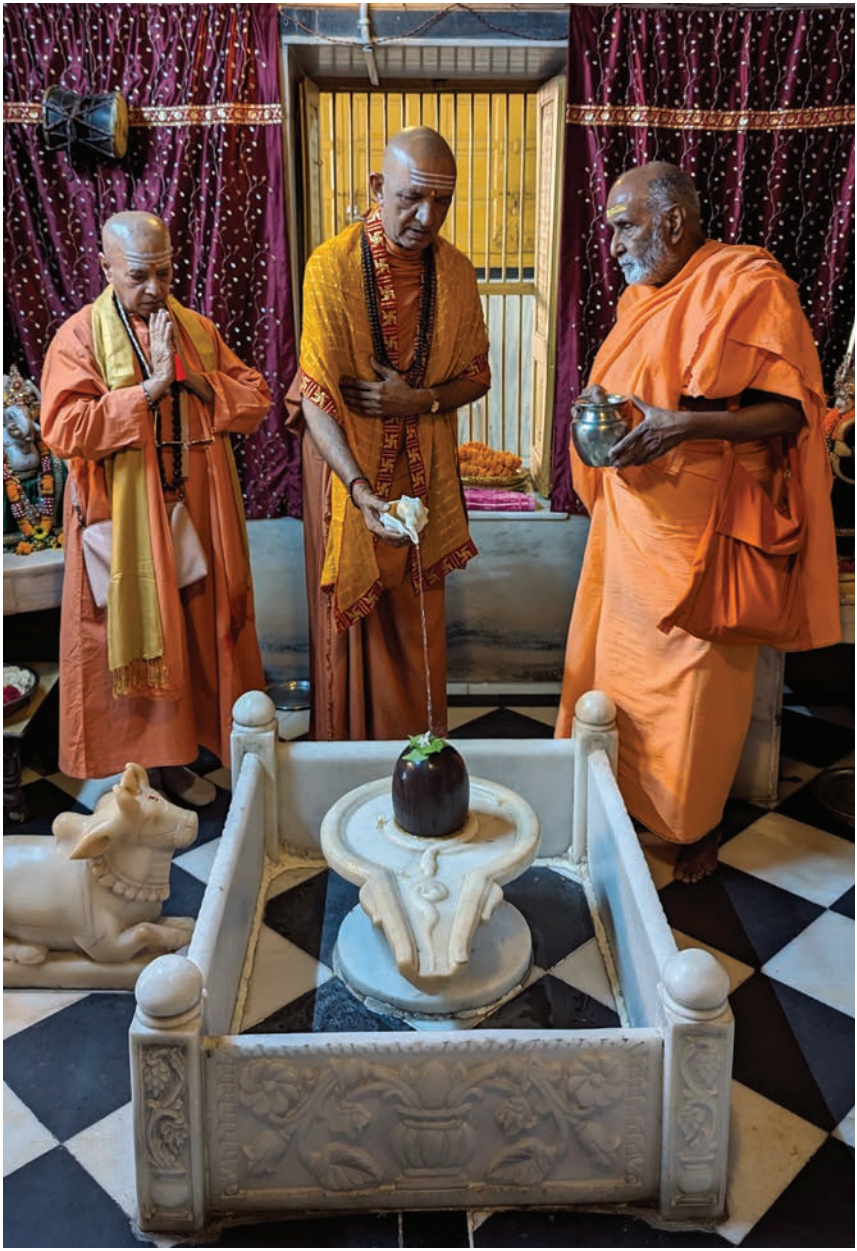

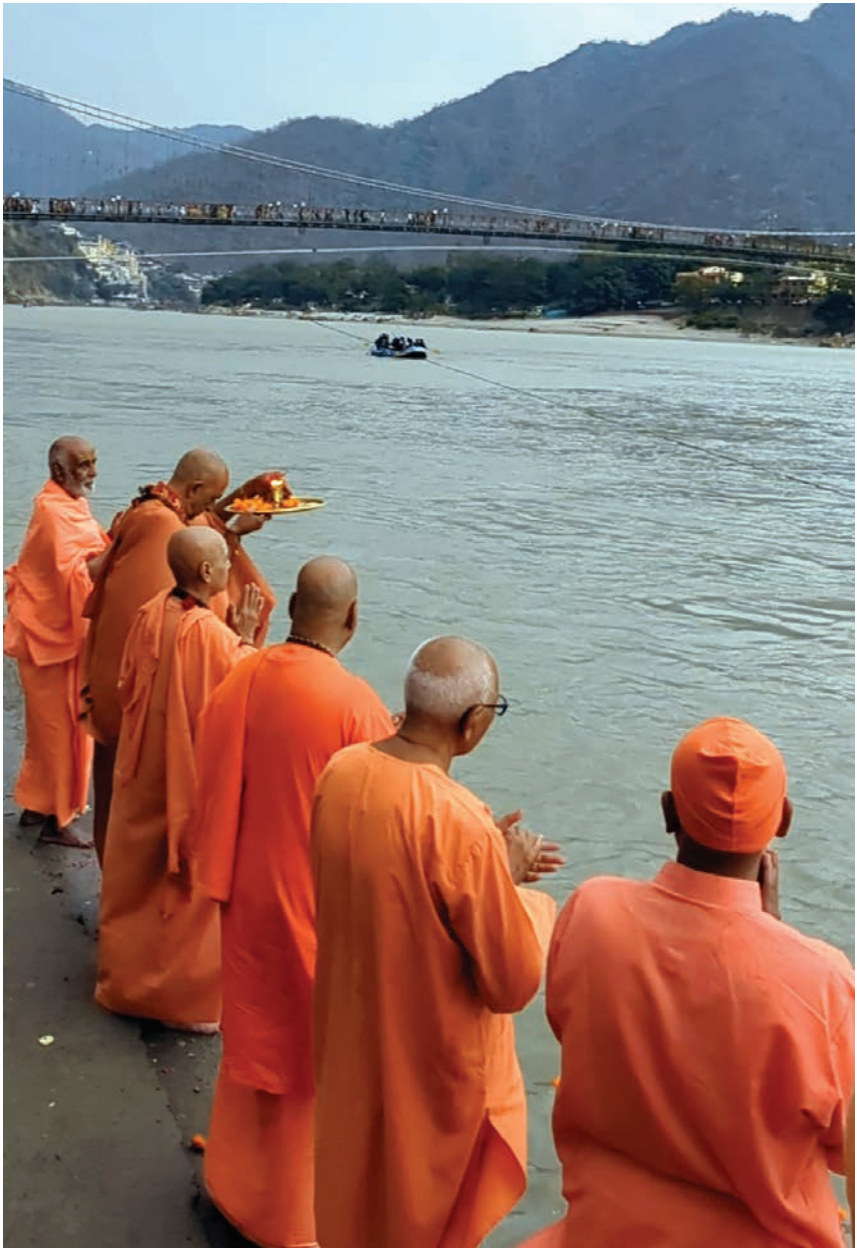

कर्म-संन्यास का पथ

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज बहुत दिनों के बाद तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ, क्योंकि इसी बीच मुझे पत्र लिखने का पुराना अभ्यास चर्रा गया है और दूसरी बात यह भी है कि महीने में मैं दो-चार लम्बे-चौढ़े पत्र नहीं लिखूँ तो मेरी पहली तारीख आती ही नहीं। आज गुरु-पूर्णिमा थी, सोचा कि किसी को कुछ लिखूँ... पर लिखूँ किसे? सारे के सारे मित्रगण यहीं पधारे हुए हैं... गुरुजी की झोली को भरने ओर उनकी चरण-रेणु में नाक रगड़ने के लिए।

तो फिर पत्र लिखने का मतलब कुछ और भी हो सकता है। क्या होगा? बताऊँगा, किन्तु तब जब यह निश्चय कर लो कि तुम इस पत्र को ठीक-ठीक समझने का प्रयत्न करोगी और जो कुछ मैं कहूँ उसे मेरा अपना कथन न समझ कर श्री स्वामीजी का आदेश समझोगी। मैं हूँ पत्र लिखने वाला, स्वामी पत्र लिखाने वाले और कोई एक है तुम्हारे पास पत्र भेजने वाला।

हिन्दू धर्म में चौथा आश्रम है संन्यास और यह ऐसा आश्रम है, जिसके नियम त्याग और विराग पर अवलम्बित हैं। यद्यपि यह आश्रम सर्वश्रेष्ठ है, तथापि इसकी मर्यादा सीमित है और यदि इसको प्रोत्साहन दिया जाता है तो जननीति पर कुठाराघात होता है, और यदि इसे भुला दिया जावे, तो जीवन के सच्चे आनन्द की आशाएँ भस्मीभूत हो जाती हैं। तब तो फिर यह एक समस्या खड़ी हो गई... पर ऐसी बात नहीं। सोचते-सोचते इसका हल निकल गया और गीता में इसको एक नया स्वरूप मिला। वह क्या था? वह था विदेहराज जनक सदृश महानुभावों का कर्मसंन्यास योग। पर कट्टरवादी भारत की भावना संन्यास के इस आदर्श को केवलमात्र थ्योरी के रूप में ही मानती रही... व्यावहारिक रूप देने से हिचकने लगी। यदि सुधारकों ने इस पर जोर दिया भी, तो जनता की संकीर्ण आँखें उन पर बरसने लगीं। फल यह हुआ कि संन्यास आश्रम कट्टर रहा और कर्म-संन्यास एक फिलॉसॉफी। पर स्वामीजी ने संन्यास को उदार बनाया है और कर्म-संन्यास को एक सम्भावना, यद्यपि इसका श्री-गणेश बहुत पहले हो चुका था। अब यह प्रश्न आता है कि यह कर्म-संन्यास क्या बला है, और कर्म-संन्यासी परमहंस-संन्यासी तथा अन्य संन्यासियों से किस रंग में अलग है?

स्वामीजी का कर्म-संन्यासी एक संन्यासी की परिभाषा का ही रूप है। संन्यास धर्म के मौखिक सिद्धान्त का उसे भी प्रतिपालन करना पड़ता है। वह धार्मिक भी होता है, सदाचारी भी होता है, विचारशील और विवेकशील भी होता है, उसे अविवाहित ही रहना पड़ता है, राग-द्वेष इत्यादि द्वन्द्वों से वह दूर भागता है... पर वह जंगलों में नहीं रहता, उन्मत्त की भाँति नहीं विचरता, न तो नंगा फिरता है, न निष्कर्मण्य जीवन बिताता है, न तो पलायनवादी बनता है, न रूढिग्रस्त बनकर संन्यासियों की युग-परम्परा से चली आ रही नीति-नियमावलि को ही घोषित करता है। वह तो फौजी सिपाही की तरह वर्दी और सादे कपड़े, दोनों ही पहन सकता है। फौजी सिपाही कर्त्तव्य निभाने की बेला में वर्दी से सुसज्जित और अन्य समय पर सादे कपड़े पहनता है। स्वामीजी का

कर्म-संन्यासी भी गेरू वस्त्रधारी होता है, पर वह समय और समाज के अनुकूल बाहरी आचारों को ढील दे सकता है, पर केवल तभी तक, जब तक उससे अपने जीवन का हनन न हो। ऐसे संन्यासी स्वामीजी के सन्निधान में तैयार होते जा रहे हैं। वे संन्यासी मुझ जैसों से भिन्न हैं। जहाँ मेरी आत्मा नियमों और प्रतिबन्धों में जकड़ी हुई पड़ी है, वहाँ उन कर्म-संन्यासियों की चेतना प्रकृति के बहाव के साथ तीव्र प्रगति से अपना पथ पार कर रही है। जहाँ आश्रम में एक सीमा है, वहाँ विश्व उनका परिवार है। मैं संसार से घृणा करता हूँ, पर वे उसमें भी पवित्रता को खोजते हैं। इन आदर्शों को लेकर स्वामी जी का नया ऑर्डर, कर्म-संन्यास कायम हो चुका है।

– योग-वेदान्त के नवम्बर 1955 अंक से साभार उद्धृत

दो शताब्दियाँ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पिछले वर्ष और इस वर्ष आश्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो रही हैं। पिछले वर्ष हमलोगों ने अपने पूज्य गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानंद जी की जन्म शताब्दी मनायी और इस साल भी दो शताब्दियाँ मना रहे हैं। एक शताब्दी है स्वामी धर्मशक्ति जी के जन्म की, और दूसरी शताब्दी है अपने परमगुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी के संन्यास की।

ऐसा पढ़ने में आता है कि जब ईश्वर का अवतरण होता है तब उस समय देवी-देवता भी धरती पर जन्म लेकर उनको सहयोग देते हैं। रामचरितमानस में तो इसका पूरा उल्लेख है। आखिर वानर कौन थे? सभी देवताओं के अंश थे। कृष्ण काल में भी यही घटना घटित हुई, बल्कि कृष्ण काल में और राम काल में केवल देवता ही नहीं, राक्षस भी जन्म लिए थे। *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्* – यह चक्र तो हमेशा चलते रहता है, किंतु इन प्रसंगों में जो महत्त्वपूर्ण बात है वह यही कि एक अवतारी पुरुष के सहयोग के लिए दिव्य आत्माएँ इस धरती पर जन्म लेती हैं। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानन्द जी भी एक दिव्य अवतारी पुरुष हैं, शिवजी के ही साक्षात् अवतार हैं। अगर आप उनकी कहानी जानते हैं तो ज्यादा बताने की आवश्यकता नहीं। उनके पूर्वज, श्री अप्पय दीक्षित को शिवजी ने कहा था कि सातवीं पीढ़ी में मैं तुम्हारे वंश में जन्म लूँगा, और सातवीं पीढ़ी में जन्म हुआ है स्वामी शिवानंद जी का। देखिये कैसा संयोग कि नाम भी पड़ा शिव-आनंद – शिवानंद, और उन्हें संन्यास किसने दिया? जिस महापुरुष ने उनको संन्यास दिया उनका नाम था स्वामी विश्वानन्द। विश्व में किसका वास होता है? विष्णु का।

जले विष्णु: स्थले विष्णु: विष्णु: पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णु: सर्वं विष्णुमयं जगत्॥

भगवान विष्णु के कारण ही हम लोग जीवित रहते हैं। भगवान नारायण और शिव का भी एक बहुत सुंदर संबंध रहा, जब नारायण जन्म लेते हैं तो शिव उनके गुरु बनते हैं, और जब शिव जन्म लेते हैं तो नारायण उनके गुरु होते हैं। फिर उनके सहयोग के लिए दिव्य आत्माओं का जन्म भी होता है।

इसमें नाम हम बहुतों का ले सकते हैं, लेकिन जो प्रमुख नाम हमारी परंपरा में आते हैं, वे हैं हमारे गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, और दूसरे हैं उनके प्रथम शिष्य, स्वामी सत्यव्रतानन्द जी और स्वामी धर्मशक्ति जी।

आज हम लोग स्वामी धर्मशक्ति जी की जन्म शताब्दी मना रहे हैं। जो लोग उनके साथ रहे हैं उन्हें उनके बारे में ज्यादा बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे भली-भाँति समझते हैं कि वे किस प्रकार की विदुषी और दिव्य महिला थीं, एक सिद्ध स्वामी थीं। आज उनकी जन्मशताब्दी मनाना अंतरात्मा में हर्ष की अनुभूति दिलाता है। इस दिन हम याद रखेंगे एक दिव्य आत्मा का अवतरण जो देवकार्य के लिए इस धरती पर हुआ था। और हमारे साथ उनका क्या संबंध था? वे हमारी माँ थीं। हमें गौरव का अनुभव होता है कि ऐसी दिव्य आत्मा के पुत्र के रूप में भगवान ने जन्म लेने का अवसर दिया।

– 23 मई 2024, सत्यम् उद्यान, गंगा दर्शन

आनंद की ओर – सत्यानंदाश्रम यूनान

श्री स्वामीजी की शिक्षाओं पर आधारित जीवनोपयोगी पाठ शृंखला

जनवरी से दिसंबर तक हर महीने यह शृंखला प्रत्यक्ष या ऑनलाइन ढंग से आयोजित की गई, जिसका शीर्षक था 'श्री स्वामी सत्यानंद जी के जीवन की शिक्षाएँ – स्वामी शिवमूर्ति के संग'। यह शृंखला श्री स्वामी सत्यानंद जी के जीवन, शिक्षाओं और कार्यों को समर्पित थी।

शृंखला के अन्तर्गत विषयों में महा शिवरात्रि, दु:ख को सम्भालना, महिलाएँ और संन्यास, आश्रम जीवन, यौगिक जीवनशैली, भक्ति आराधना और करुणा से प्रेरित छोटे-छोटे कार्य, स्वीकृति, प्रसन्नता से जुड़ना, गुरु भक्ति, समस्याओं का निदान, जागरूकता को गहरा करना और मन-प्रबंधन जैसे विषय शामिल थे।

आश्रम में आने वाले विभिन्न देशों के लोग और साथ ही वे लोग जो दूरी के कारण यात्रा नहीं कर सकते, इस शृंखला का आनंद ले रहे हैं जो हमारे प्रिय गुरु की स्मृति का सम्मान करती है। प्रतिभागियों को बहुत प्रेरणा और ज्ञान प्राप्त हुआ है, साथ ही वे सेवा, प्रेम और दान के सिद्धांतों पर अपने देशों में परियोजनाएँ बनाने के लिए भी प्रोत्साहित हुए हैं।

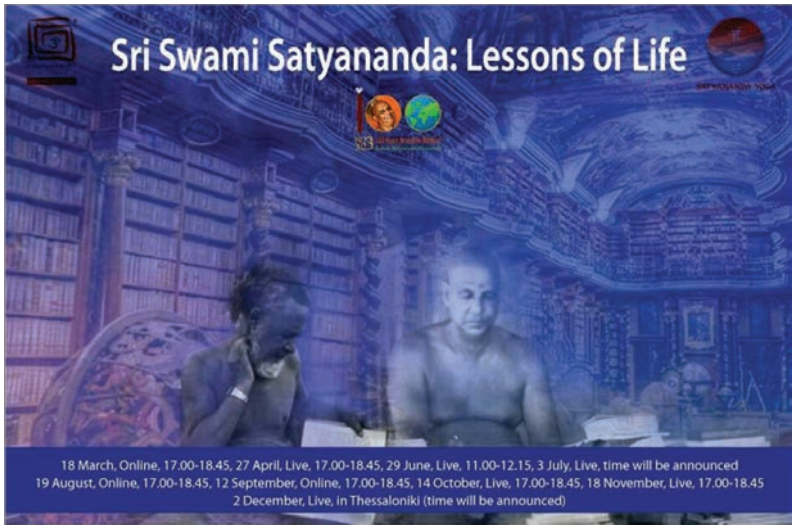

जीवनोपयोगी पाठ संगोष्ठी

1 अक्टूबर को बल्गेरियन योग एसोसिएशन के सहयोग से एक ऑनलाइन व्याख्यान आयोजित किया गया जिसमें आपसी प्रेम और सहयोग के बारे में विचार साझा किये गये। सेवा योग के गहन लाभों को आत्मसात् किया गया और प्रतिभागियों ने महसूस किया कि सेवा को 'जीवन का उद्देश्य' मानने के विचार ने उन्हें गहराई तक छुआ।

भक्ति आराधना

जनवरी से दिसंबर 2023 तक लाइव और ऑनलाइन कार्यक्रम आयोजित हुए –

- हर महीने की 4, 5 एवं 6 तारीख को गुरु भक्ति योग
- 11 जनवरी को स्वामी निरंजनानंद जी का संन्यास दीक्षा दिवस
- 18 और 19 फरवरी, महा शिवरात्रि
- 22 जून, आगमन
- 2-6 जुलाई, गुरु पूर्णिमा और 'स्रोत से जुड़ना' नामक कार्यक्रम, जिसमें सैकड़ों स्थानीय शुभचिंतकों के अलावा पूरे यूरोप से 200 से अधिक भक्तगण शामिल हुए।
- 8-12 सितंबर, सत्यानंद शिविर
- 7 मई, सभी यूनानी योग प्रशिक्षकों के लिए संघ शिक्षक विकास सत्र और संगोष्ठी
- 7-9 जुलाई, महिला योग संगोष्ठी

इन कार्यक्रमों में यूनान, यूरोप, यू.के., यू.एस.ए. और ऑस्ट्रेलिया से लोग शामिल हुए हैं। स्वामी शिवमूर्ति सरस्वती द्वारा दिए गए सत्संगों ने प्रतिभागियों को श्री स्वामी सत्यानंद के बृहत् कार्य और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता से अवगत कराया।

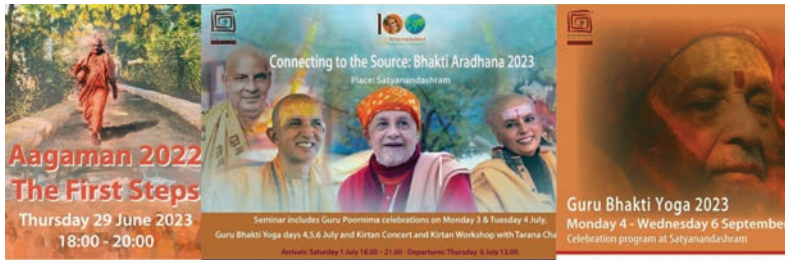

अश्विन नवरात्रि और साधना सप्ताह

2023 के सेवा संकल्प के अंतिम लक्ष्य के रूप में यह सभी यूनानी और विदेशी साधकों के लिए निःशुल्क (आवास, भोजन और कार्यक्रम) प्रदान किया गया है। इस कार्यक्रम को सत्यानंद परंपरा के एक शिष्य द्वारा वित्तीय रूप से प्रायोजित किया गया, जिसका उद्देश्य सत्यानंद परिवार के सदस्यों के साथ-साथ नए सदस्यों को भी आसानी से आश्रम आने में सक्षम बनाना है।

चैत्र नवरात्रि

22 से 30 मार्च तक चलने वाले इस कार्यक्रम में साधना को निष्ठा और समर्पित तरीके से अपने जीवन में लागू करने के महत्त्व पर जोर दिया गया। प्रतिभागियों ने आश्रम में रहकर जप, कीर्तन, षट्कर्म और सत्संग में भाग लिया और अन्य साधकों की संगति का आनंद उठाया।

यौगिक दिवस

29 जनवरी और 22 अक्टूबर को सत्यानंद योग और अन्य परम्पराओं के प्रशिक्षक, उनके विद्यार्थी और अन्य योगप्रेमी एक यौगिक दिवस का अनुभव करने आश्रम आए।

दैनिक जीवन में श्रीमद्भगवद्गीता के दर्शन को अपनाना

फरवरी 2023 में यह ऑनलाइन कार्यक्रम बल्गेरियन योग एसोसिएशन द्वारा आयोजित किया गया जिसमें स्वामी शिवमूर्ति ने जीवन की बाधाओं को दूर करने, जीवन की गुणवत्ता एवं आध्यात्मिक आकांक्षाओं को बढ़ाने और अपनी साधना का सुदृढ़ करने के तरीकों पर चर्चा की। कार्यक्रम में बल्गेरियन और विदेशी प्रतिभागियों ने भाग लिया, जिसमें योग प्रशिक्षक, योग साधक, शुभचिन्तक और विद्यार्थी शामिल थे। प्रतिदिन गीता पढ़ना बहुत प्रेरणादायक था। इस बात पर प्रकाश डाला गया कि गीता आज भी कितनी प्रासंगिक है। इस पर गहन चिंतन हो ताकि बाधा-निवारण के तरीके खोजे जा सकें।

उत्तरी यूनान का दौरा

1 से 9 मार्च तक स्वामी शिवमूर्ति सरस्वती ने उत्तरी यूनान के विभिन्न हिस्सों का व्यापक दौरा किया और योग प्रशिक्षकों, महिला समूहों, योग विद्यार्थियों

और साधकों से मुलाकात की। कोविड महामारी के दौरान उनके समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों पर चर्चा की और उन्हें अपने समुदाय के उत्थान, एकजुटता और प्रेरणा के लिए कार्यक्रम आयोजित करने के लिए प्रोत्साहित किया।

शिक्षक विकास संघ

- 15 जनवरी, 19 मार्च और 7 मई को भगवद् गीता के दर्शन पर ऑनलाइन सत्र हुए, जिनमें गीता के पहले तीन अध्यायों का अध्ययन किया गया और तनाव, संघर्ष एवं अवसाद से निपटने के तरीके खोजने के लिए इनका मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया।
- 8 अक्टूबर को स्वामी शिवमूर्ति सरस्वती द्वारा सत्यानंद योग प्रशिक्षकों के लिए ऑनलाइन 'लर्निंग बाय डूइंग इंस्ट्रक्टर कोर्स' संचालित किया गया, जिसका विषय 'शरीर के पंच प्राणों की समझ एवं अनुभव को गहरा करना' था।

महिला योग समूह

जनवरी से जुलाई – ऑनलाइन और लाइव द्वि-मासिक सत्र –

- दैनिक जीवन में संन्यास सिद्धांतों का प्रयोग
- जुलाई की संगोष्ठी सभी महिलाओं के लिए खुली थी
- पूरे यूनान से विभिन्न महिलाओं ने एकजुट होकर श्री स्वामी सत्यानंद जी की शिक्षाओं पर आधारित वीडियो, नाटिकाएँ, कविताएँ, डिजिटल प्रस्तुतियाँ और कीर्तन तैयार किए। इस परियोजना में 80 से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। कोविड लॉकडाउन के बाद पहली बार महिलाओं को आश्रम में आने का अवसर मिला था। उनके आगमन से पूरे आश्रम में ऊर्जा और उत्साह का स्तर बहुत ऊँचा था। योग अभियान 2023 के अंग के रूप में, पूरे यूनान में महिला योग समूहों ने स्थानीय समुदायों के लिए कई परियोजनाओं का आयोजन किया है जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं –
- अभावग्रस्त परिवारों को आर्थिक और मनोवैज्ञानिक रूप से मदद और सहारा देना
- पीड़ित महिला आश्रय-गृहों और अनाथालयों की सहायता करना

- कैंसर रोगियों को सत्यानंद योग प्रणाली की कक्षाएँ निःशुल्क प्रदान की जा रही हैं, प्रत्यक्ष और ऑनलाइन माध्यम से
- लाइव कीर्तन कार्यक्रम
- 'प्रकृति में योग' सत्र

बच्चों के लिए योग

- 17 और 18 जून को 'योग फॉर किड्स' कार्यक्रम के अंतर्गत पूरे यूनान से बच्चों को आश्रम की सुंदरता एवं सौम्यता का अनुभव करने लाया गया।
- 16 सितंबर को 'योग फॉर टीन्स' ने किशोरों को अपने साथियों के लिए संगोष्ठी चलाने का अवसर दिया। इसका उद्देश्य युवाओं को सत्यानंद योग के अभ्यासों और जीवनशैली से परिचित कराना है।

कीर्तन कार्यक्रम

- तरण चैतन्य ने यूनान, बल्गेरिया और सर्बिया के अन्य गायकों और संगीतज्ञों के साथ मिलकर कीर्तन किया। उसने सत्यानंदाश्रम हेलास में गुरु पूर्णिमा उत्सव के दौरान कीर्तन कार्यशाला भी चलाई। कई देशों के लोगों को करीब आने का अवसर मिला और उन्हें कीर्तन की शक्ति एवं प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

- नवम्बर में योग महोत्सव के दौरान पूरे यूनान से कीर्तन समूह आए।

अन्नपूर्णा बाल परियोजना

योग अभियान 2023 के तहत थेसालोनिकी में बच्चों के लिए रचनात्मक गतिविधियों का केंद्र स्थापित किया गया है। वंचित पृष्ठभूमि के 5 से 12 वर्ष की आयु के बच्चों को स्कूल के बाद कला और शिल्प, संगीत, खाना पकाने, रोबोटिक्स, थिएटर, सांस्कृतिक भ्रमण और बुनियादी कंप्यूटर सिद्धांतों को सीखने जैसी रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर मिलता है।

क्रिसमस उत्सव

2 से 8 दिसंबर तक सत्यानंदाश्रम सभी के लिए अपने द्वार खोलता है ताकि लोग आश्रम परिसर में आकर सत्यानंद योग के उदात्त वातावरण का आनंद लें। एक उदार शिष्य द्वारा प्रायोजित यह कार्यक्रम आश्रम सदस्यों, विद्यार्थियों, शिक्षकों, साधकों और नए लोगों को आश्रम परिसर आने में सक्षम बनाएगा।

ऑनलाइन सत्संग शृंखला

24 दिसंबर को स्वामी शिवमूर्ति सरस्वती के साथ ऑनलाइन सत्संग की एक शृंखला शुरू हुई ताकि उन अनेक लोगों से संपर्क किया जा सके जो व्यक्तिगत रूप से आश्रम नहीं आ सकते। यह शृंखला 2024 में भी जारी रहेगी।

संस्कार-क्षय के लिए कर्मयोग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

संसार के सब लोग जो प्रवृत्ति-मार्ग में लगे हैं, जिनके चारों ओर इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और कामनाएँ फैली हैं, कर्म के एकान्तिक परित्याग से सुखी नहीं हो सकते, बल्कि कर्म के सिवाय दूसरा कोई मार्ग उनके लिए श्रेयस्कर नहीं है। निवृत्ति मार्ग के अवलम्बन एवं कर्म के त्याग से उन्हें असफलता ही मिलेगी। यदि कर्म और संस्कार के रहते कोई निवृत्ति-पथ का अवलम्बन करता है तो उसकी दशा ठीक वैसे व्यक्ति जैसी हो जाती है, जिसकी अन्तरकाया विजातीय द्रव्यों से भरी हो, पर ऊपर साफ रहकर स्वास्थ्य की कामना करता हो। कर्म-संस्कार का क्षय किये बिना कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। यजुर्वेद के आठवें अनुवाक् में एक मंत्र आता है – *अन्या पंथा न विद्यते*। कमरे में प्रवेश तो दरवाजे से ही होगा, खिड़की या प्रकाशद्वार से नहीं। वैसे ही कर्म है। कर्म से ही कर्म का नाश सम्भव है।

प्रारब्ध को समाप्त करने के लिये कर्म और पुरुषार्थ आवश्यक है। इसीलिये गीता और योग-वाशिष्ठ में कर्म पर जोर दिया गया है। कर्म का सांसारिक या बाह्य पक्ष चाहे जो भी हो, उसका आध्यात्मिक पक्ष बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

संसार के जिस धर्म या पक्ष ने कर्म को हेय मानकर उसका त्याग करवाया, वह जीवित नहीं रह सका।

जिनके ऊपर कर्म-संस्कारों का बोझ है, उनके लिये कर्म का ही रास्ता उचित है, तथा जो बन्धनमुक्त हो चुके हैं, उनके लिये निवृत्ति का मार्ग है। निवृत्ति मार्ग विहंगम-मार्ग है, और प्रवृत्ति-मार्ग पिपीलिका-मार्ग, जो मंथर तो है, पर है ध्रुव। साधन मार्ग से मनुष्य थोड़ा शीघ्र पहुँचता तो है, पर यह सभी के लिये सुलभ नहीं। चंचल चित्त, अस्थिर वृत्तियाँ, मन में अनेकों कामनाएँ, शरीर के व्यवधान और विक्षेपों के आवेगों को लेकर कोई विहंगम मार्ग से कैसे चल सकता है? उसमें तो केवल कष्ट ही कष्ट होगा। इसमें जीवन का मोह और उसकी सारी सुविधाओं को छोड़ना पड़ता है। जिन वस्तुओं से हमारा जन्म-जन्म का लगाव रहा है, जिन्हें हम अपना मानते हैं, उन्हें छोड़ देना पड़ता है, सारी भावनाओं को तिलांजलि दे देनी पड़ती है। अपने भूतपूर्व विचारों और मान्यताओं को छोड़ना पड़ता है। अपने पुराने व्यक्तित्व को समाप्त करना पड़ता है। यह त्याग का पंथ कितना कठिन है!

प्रवृत्ति-मार्ग में अपनी सारी कमजोरियों और अपने सभी गुणों को साथ लेकर बढ़ा जा सकता है। आवश्यकता है कि केवल उनकी दिशा बदल दी जाय। शास्त्रों ने जिसे प्रवृत्ति-मार्ग कहा है, उसे वेद ने कर्म-मार्ग की संज्ञा दी है। प्राचीन शास्त्रों ने जिसे निवृत्ति-मार्ग कहा, सांख्य उसे ही संन्यास मार्ग कहता है। यह श्रेष्ठ तो है ही। गीता में भी इसकी प्रशंसा की गई है। छान्दोग्य-उपनिषद् में भी इन दो मार्गों का वर्णन आया है – छाया का मार्ग और धूप का मार्ग। पर हर व्यक्ति छाया के मार्ग से जा नहीं सकता है। जो त्याग और अपराजेय वृत्ति वाला है, उसे यदि प्रवृत्ति-मार्ग में डाला जाय तो वह घुटन का अनुभव करेगा।

एक विचित्र बात है। संसार के लोग हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग या राजयोग को जानने के लिये लालायित रहते हैं, पर कर्मयोग को नहीं। कर्म की गति विचित्र होती है। कर्म केवल कार्य करने को ही नहीं कहते हैं। यह सृष्टि का एक नियामक सत्य है, एक ऐसी परम्परा है, जो मनुष्य जनम-जनम कमाकर पूँजी की तरह संजोता है। हम जब कर्म करते हैं, तब वह कर लेने मात्र से ही समाप्त नहीं हो जाता, मन और जीवन पर उसका निश्चित प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव को ही हम संस्कार कहते हैं, और उसके बाद विचारों का पुनर्जन्म भी होता है। यदि किसी घटना को केवल हम देखते हैं तो भी उसका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़े बिना नहीं रह सकता है। भले ही वह प्रभाव आज पड़े या दस

साल बाद। आदमी बचपन में अपने माता-पिता को जो कर्म करते देखता है, उसे भले ही उसका अबोध मस्तिष्क समझ नहीं सके, पर उसके मानस-पटल पर उसका प्रभाव अंकित हुए बिना नहीं रहता। वह प्रभाव जितना ही बचपन में उसके ऊपर पड़ेगा, उतनी ही अधिक उम्र में वह प्रकट होगा। यदि माँ-बाप के चाल-चलन का प्रभाव दो या तीन वर्षों की उम्र में पड़ेगा, तो वह 30 या 35 वर्ष की उम्र में प्रकट होगा।

आते-जाते, नजर आ पड़ने वाले, रास्ते के दृश्य भी सूक्ष्म मन पर प्रभाव उत्पन्न करते हैं, तथा जाने-अनजाने एक संस्कार का निर्माण होता है। भले ही वह व्यक्ति उस दृश्य को बिना लोभ के ही क्यों न देखे। यदि लोलुप दृष्टि से देखता है, तो तीव्र संस्कारों का निर्माण होगा और वह शीघ्र प्रकट होगा। यदि तटस्थ भाव से देखा गया है, तो उसका प्रभाव देर से प्रकट होगा। यही वासना जीवन में हर्ष, शोक, मित्रता, शत्रुता, ईर्ष्या और कामना लाती है। चिन्ता और भय, चाहे जिस किसी भी प्रत्यक्ष कारण से सम्बन्धित हों, उनके अप्रत्यक्ष कारण भी होते हैं। हमारे प्रत्येक कर्म, अच्छे-बुरे, साधारण या तीव्र एक साथ इकट्ठे हो जाते हैं, सूक्ष्म शरीर में अलग-अलग कमरे नहीं हैं।

साधारणतया लोग कर्म से मुक्ति के लिये कर्म को ही छोड़ने की बात कहते हैं। कुछ ऐसी ही घटना का वर्णन योग-वाशिष्ठ में आया है। उसमें

हिन्दू दर्शन का आदर्शवाद पूर्ण-रूप से उभरा है। वैराग्य का नित्य कर्मों के त्याग से कोई सम्बन्ध नहीं। जो विरक्त हैं, उनके लिये आवश्यक नहीं कि वे अपने कर्मों का त्याग करें। कर्म तो मनुष्य शरीर और समाज पर प्रकृति और संस्कारों द्वारा लादा गया है। उसे करना होगा और कर्म करते हुए भी कर्म-बन्धन छूट सकता है। हमारे सामने अनेक उदाहरण हैं। राजा जनक ने कर्मों के द्वारा ही सिद्धि पायी थी। यदि हम सेवा, साधना, आत्म-भावना और 'ईशावास्यं इदं सर्वम्' की भावना से कर्म करेंगे तो

शुभ हो या अशुभ, वह हमें बाँध नहीं सकता है। कर्म सकाम हो या निष्काम, कोई अर्थ नहीं रखता, पर यह जरूरी है कि हमारी इच्छाएँ हमारे सिर पर भूत की तरह छा न जायें। यदि ऐसा होगा तो वही बन्धन का कारण बन जाएगा।

यहाँ उपनिषद् केवल कर्म पर ही जोर नहीं देते, बल्कि सौ साल जीने की प्रेरणा भी देते हैं। यह आशावाद की भावना है। आशावादी जब अपने भविष्य को देखता है तो उसे सर्वदा प्रकाश दिखता है। जीवन के तिमिर में भी उसे आशा की किरण फूटती नजर आती है। जीवन में आशावादी दृष्टिकोण रखने के लिये जीवन और कर्म, दोनों से प्रेम रखना आवश्यक है। तभी जीवन सुनहरा होता है। कुछ लोग अपने गलत आचरण के कारण जीवन से थक जाते हैं और छुट्टी पाना चाहते हैं। उनके जीवन में राग और विराग, दोनों में संघर्ष चलता रहता है। कर्म से प्रेम नहीं रहने के कारण जीवन अंधकारमय हो जाता है।

वेद में केवल सौ वर्ष तक जीने की ही कामना नहीं की गई है, बल्कि स्वस्थ रहकर जीने को कामना की गई है – *'जीवेम शरदः शतम्, पश्येम शरदः शतम्'*। यही उपनिषद् की भावना है। कर्म और दीर्घजीवन, दोनों की आवश्यकता ठहरायी गयी है।

यदि हमें कर्म करते हुए उसका श्रम प्रतीत होगा तो सम्भव है कि हम निराशावादी हो जायें। उसके बाद कर्म के उस पारिश्रमिक का पूर्ण उपभोग नहीं कर पायेंगे। निराशावादी व्यक्ति को संसार में सब कुछ प्राप्त होने पर भी निरन्तर पश्चात्ताप करना पड़ता है। अच्छा डॉक्टर मिलने पर भी मृत्यु का भय बना रहता है। कोई धनी व्यक्ति यदि निराशावादी हुआ तो उसे निरन्तर धन-क्षय का भय बना रहता है।

जो आशावादी जीवन व्यतीत करते हैं, वे मृत्यु के आने पर उसका स्वागत करते हैं, और वह जब तक नहीं आती, उसे याद भी नहीं करते। वे जीवन में स्वतंत्र विचरण करते हैं। ऐसे ही व्यक्ति के जीवन में प्रतिभा आती है। मनुष्य को सदा जीवन के साथ चलना चाहिए। जितना जीवन हमें मिला है उसके प्रति अवहेलना का भाव नहीं रखना चाहिए। यूँ तो प्रत्येक आदमी ज्यादा दिन जीना चाहता है, पर कर्म ही वह ऐसा करता है कि वह अल्पायु बन जाता है।

कर्म का एक अपना दर्शन है, एक महान् दृष्टिकोण है। भले ही राजनीतिज्ञ इसे राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से आवश्यक समझें, पर इसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी है। कर्म मनुष्य के संस्कारों को क्षय करने का एक शक्तिशाली माध्यम है। जन्म-जन्म की संचित वासना का क्षय कर्म से ही होता है। हमारे

जन्म-जन्म के किये, विभिन्न प्रकार के अच्छे और बुरे कर्म जो धरोहर के रूप में संचित रहते हैं, उन्हीं के समूह को वासना कहते हैं। कर्म का सम्बन्ध शरीर से ही नहीं, जीव से भी है।

कर्म से पहले कर्म का भाव हमारे विचारों में आता है। इन विचारों से इन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं, और तब हम कर्म करते हैं। अब प्रश्न उठता है कि विचार हमारे मन में कहाँ से आते हैं। भौतिकवादी कहते हैं कि समाज की परिस्थितियों से प्रभावित होकर ये विचार हमारे मन में उत्पन्न होते हैं, पर उसकी वास्तविक क्रिया अन्दर से ही उत्पन्न होती है, भले ही बाह्य परिस्थितियाँ चिनगारी बनकर उन्हें भड़काने का काम करें। हमारे अंतःकरण में दबी हुई वासनाएँ बाह्य वातावरण के सम्पर्क में आकर जागृत होती हैं, और तब मन में विचारों का उदय होता है। वेदान्त में इस वासना को सूक्ष्म शरीर कहा गया है। कभी तो यह वासना इतनी गहन हो उठती है कि प्रतीत होता है कि उसकी समाप्ति असम्भव है।

जहाँ एक ओर कर्म करने से संस्कारों का नाश होता है तो दूसरी ओर नये संस्कार उत्पन्न भी होते हैं। कर्म वासना की गठरी कभी हल्की और कभी भारी होती रहती है। इसीलिये शास्त्र कहता है कि यदि अनासक्त भाव से कर्म किया जाए तो नई वासना का प्रकटीकरण नहीं होगा।

यूनान के राजा मिलिन्द ने योगी नागार्जुन से एक बार यही प्रश्न पूछा था, 'जीव के कर्म कब बनते हैं और कब नहीं?' नागार्जुन ने कहा था कि अनुकूल ऋतु में उर्वरक देकर खेत में बीज बोया जाय, तो अधिक उपजेगा, पर यदि वही बीज कहीं मेढ़ पर गिरे तो पौधा तो उगेगा पर शीघ्र नष्ट हो जाएगा। यदि उसी बीज को बोने के पहले तवे पर भून दिया जाय तो कितना भी अनुकूल वातावरण क्यों न हो, वह अंकुरित नहीं होगा। कर्मों के बीज को भी यदि अनासक्ति के तवे पर भून दिया जाय तो उसमें से संस्कारों के अंकुर नहीं फूटेंगे। पर उन्हें अविद्या और आसक्ति की भूमि पर बोया जाए तो पैदावार सौ गुनी होगी, हमारे संस्कारों की गठरी भारी हो उठेगी।

विकास की परम्परा में कर्मों का बहुत बड़ा महत्त्व है। जो इन कर्मों को साधना के रूप में स्वीकार करते हैं, उनका प्रत्येक पक्ष मजबूत होता है। कर्म प्रकृति की असमर्थता का नाम है। कोई चाहे या न चाहे, कर्म करना ही पड़ेगा। यदि कर्म छोड़ दिया जाए तो विचार करना पड़ेगा, और यदि विचार भी नहीं किया जाए तो विक्षिप्तावस्था की प्राप्ति होगी।

मोक्ष प्राप्ति के लिये कर्म के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो लोग संसार की घटनाओं से ऊपर उठ चुके हैं, विरागी हो चुके हैं, वैसे लोगों के लिये तो ज्ञान मार्ग है, राजयोग का मार्ग है। जो शरीर से पुष्ट हैं, उनके लिये हठयोग का मार्ग है। जो भावुक हैं, वे भक्तिमार्ग में जा सकते हैं, पर जिन लोगों को चौबीस घंटे निन्यानवे का चक्कर लगा रहता है, सिवाय स्वार्थ के और कुछ दिखता ही नहीं, वैसे लोगों के लिये कर्म के सिवाय और कौन-सा रास्ता हो सकता है?

यहाँ एक प्रश्न और उठता है कि कर्ममार्ग में मनुष्य चाहे कितना भी सतर्क क्यों न हो, कुछ-न-कुछ कर्म-संस्कार का उदय होगा ही। यही तो काजल की कोठरी है, पैठने वाले को दाग की संभावना बनी ही रहेगी। इसीलिये संतों ने विवेक और वैराग्य का सहारा लेने की सलाह दी है, नहीं तो कर्म की क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का प्रभाव सभी पर पड़ता है। कर्म की प्रतिक्रियायें कालान्तर से अनेक रूपों में प्रकट होती हैं, संभव है कि यह शारीरिक रोग के रूप में प्रकट हों। कभी-कभी तो मनुष्य कर्म संस्कारों का अनुभव अपने जागृत जीवन में नहीं भी करता है, पर सुषुप्तावस्था में, स्वप्न में या विचारों में तो करता ही है।

मनुष्य का कर्म, बीज की तरह उसके मन पर पड़ता है और अनुकूल समय पाकर अंकुरित होता है। कर्म को तो हम देखते हैं, पर संभव है कि उसका फल हम नहीं भी देखें। कर्म और फल के बीच एक कड़ी है, जिसे अदृश्य कहते हैं। कर्म से फल तक की क्रिया किसी के देखने में नहीं आती है। यह प्रतिक्रिया और प्रभाव के रूप में निरन्तर चलती रहती है। इसकी गति बड़ी रहस्यमय होती है, जो शब्द तरंगों की तरह निरन्तर अदृश्य में बढ़ती रहती है। हमारे कर्मों से एक प्रभाव उत्पन्न होता है, जो मन पर छा जाता है, और तदनुसार हमारे जीवन में क्रियायें और प्रतिक्रियायें होती हैं। जब तक मनुष्य कर्मशून्य नहीं हो जाता, वासनायें समाप्त नहीं हो जातीं, तब तक कर्म के चक्कर में पड़ना ही पड़ता है।

कर्म करते समय एक और ध्यान देने की बात है कि हमारे कर्म में अहंकार का भाव नहीं आये। यदि कर्त्ताभाव आ गया तो चाहे सत्कर्म हो या कुकर्म, दोनों बंधन के कारण हैं। हथकड़ी सोने की हो या लोहे की, बंधन का काम समान रूप से करती है। इसलिये कर्म करते समय सोचना चाहिए कि मैं कर्त्ता नहीं, बल्कि मेरे द्वारा कर्म हो रहा है। ऐसा करने से कर्म जीवन में दिव्य-प्रेरणा देता है और इससे चिन्ता या थकान का अनुभव नहीं होता।

ज्ञानयोग में शुद्धि का महत्त्व

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अशुद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं, बाह्य और आंतरिक। बाह्य अशुद्धियाँ 'मल' के नाम से जानी जाती हैं, जो बाह्य कारणों, विचारों या अन्य प्रभावों से मन में प्रवेश करती हैं। मान लीजिये, आप अपने मित्र से किसी अन्य व्यक्ति के विषय में कुछ अच्छा-बुरा सुनते हैं और उसे स्वीकार कर उस व्यक्ति के प्रति वैसी ही धारणा बना लेते हैं। आप वास्तव में उससे कभी मिले नहीं हैं, फिर भी उसके बारे में आप एक राय बना लेते हैं। यह बाहर से आए 'मल' का एक उदाहरण है, किसी दूसरे का कचरा आपके मन में प्रवेश कर जाता है। इसी प्रकार किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति, मानसिक स्थिति आदि के बारे में धारणा भी बाह्य कारणों से बना लेते हैं। संक्षेप में, अन्य व्यक्तियों से प्राप्त विचार, सुझाव आदि के अनुसार आप अपना मत परिवर्तन करते हैं तो यही बाह्य अशुद्धि या मल के रूप में परिभाषित है।

दूसरे प्रकार की अशुद्धि स्वनिर्मित होती है, जिसे 'विकार' कहा गया है। विकार किसी परिस्थिति के प्रति आपकी प्रतिक्रिया है जिससे काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ या मात्सर्य रूपी षट् रिपुओं में से किसी एक को आप पर

हावी होने का अवसर मिलता है और परिणामस्वरूप आपकी शान्ति भंग हो जाती है, व्यक्तित्व विक्षिप्त हो जाता है।

शुद्धता की प्राप्ति के लिए मल और विकार, दोनों को सम्भालना जरूरी है। शुद्धि का आशय यहाँ पर मन की स्पष्टता से है। जिस प्रकार स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं होता, जिस रंग के वस्त्र पर उसे रख दें वह उसी रंग का प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार शुद्धता का तात्पर्य इसी रंगहीन, स्पष्ट मानसिक स्थिति से है। जब यह शुद्ध मन इंद्रिय विषयों, कामनाओं या षट् रिपुओं के सम्पर्क में आता है तो उसी अनुरूप परिवर्तित हो जाता है। शुद्धता पाने के लिए मन को उन सम्पर्कों से मुक्त करना आवश्यक है जो उसमें विक्षेप और विकार उत्पन्न करते हैं, जो उसकी स्पष्टता को अवरुद्ध कर देते हैं। जब हम मल और विकार का अतिक्रमण कर जाते हैं और स्फटिक सदृश स्पष्ट, पारदर्शी स्थिति में स्थापित हो जाते हैं तो यह वास्तविक शुद्धि की अवस्था है। इसी को योग में 'आत्म-शुद्धि' कहा गया है।

योग शास्त्रों में संकेत दिया गया है कि हर कर्म का प्रयोजन शुद्धि की प्राप्ति होना चाहिए। *योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये* – आंतरिक शुद्धि की प्राप्ति हेतु योगी आसक्ति रहित होकर कर्म करते हैं। यहाँ योगियों द्वारा किये गये कर्मों की बात हो रही है, सामान्य या भोगी व्यक्तियों की नहीं। यहाँ एक विशेष मनःस्थिति की ओर संकेत दिया जा रहा है, जहाँ पर व्यक्ति ने योगी बनने का निर्णय ले लिया है। तात्पर्य यह कि उसने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया है और उसकी सजगता एक स्तर तक पहुँच चुकी है।

लक्ष्य निर्धारित हो जाने पर तथा अनासक्ति की सजगता उत्पन्न हो जाने पर व्यक्ति के कर्म फिर दिशाहीन न होकर नियंत्रित होते हैं। वे उन बाह्य प्रभावों से मुक्त हो जाते हैं जो मन को इधर-उधर खींचते रहते हैं। यह मुक्ति ही शुद्धि है – मन अब उन प्रभावों के रंग से नहीं रंगता, इधर-उधर नहीं भटकता। मानसिक शुद्धि से ज्ञान की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से होने लगती है, व्यक्तित्व में सामंजस्य और सकारात्मकता आ जाती है। यही ज्ञानयोग की वास्तविक शुरुआत है।

शुद्धि के सात स्तर

यौगिक परिपेक्ष्य में शुद्धि सप्तस्तरीय होती है। प्रथम स्तर का प्रारम्भ मानसिक अशुद्धियों एवं दुःखों के कारणों को दूर करने के संकल्प से होता है। इसे 'शुचि'

के नाम से जाना जाता है, जिसका तात्पर्य शोक को दूर करने से है। किसी समस्या के उत्पन्न होने पर व्यक्ति की प्रथम इच्छा यह जानने की होती है कि इसे कैसे दूर करें और जब वह अपनी इस इच्छा को क्रियान्वित करना प्रारम्भ करता है तो यही 'शुचि' कहलाता है। शुचि बहुआयामी है क्योंकि मानसिक अशुद्धियों से उत्पन्न कष्टों-दुःखों आदि की सजगता भी इसी से आती है।

शुचि की स्थिति प्राप्त करने हेतु सर्वप्रथम ध्यान के माध्यम से यह देखने की कोशिश कीजिये कि मन में क्या परेशानी महसूस हो रही है और यह कहाँ से आ रही है। क्या इसका स्रोत कोई घटना, व्यक्ति, विचार या व्यवहार तो नहीं है? फिर यह देखिये कि आप उसे अपनी सामान्य सूझबूझ से दूर कर सकने में सफल हो सकते हैं या नहीं। इस प्रकार 'शुचि' में सर्वप्रथम दुःखों और उनके कारणों को पहचानने की विवेचना होती है। यह पवित्रता का प्रथम स्तर है।

शुद्धि का दूसरा स्तर 'निर्मल' कहलाता है, जिसका तात्पर्य मल अर्थात् बाह्य अशुद्धियों के अभाव से है। इस स्तर पर आप अपने में व्याप्त अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास करते हैं। अगर किसी व्यक्ति के प्रति नकारात्मक चिंतन, घृणा या द्वेष हो तो क्या उसे रोककर निर्मल बन सकते हो?

पवित्रता का तृतीय स्तर 'विमल' कहलाता है, यह भी बाह्य अशुद्धियों से संबंधित है। विमल का मतलब हुआ उस अशुद्धि के विपरीत गुण को अपनाना जिसे आपने अपने भीतर पहचाना है। अगर आपने अपने भीतर घृणा को अशुद्धि के रूप में पहचाना है, तो आप उसके विपरीत के गुण, प्रेम को विकसित करने का प्रयास करते हैं ताकि अशुद्धि का पूर्णतया उन्मूलन हो सके। अशुद्धियों को जड़ से निकालना जरूरी है ताकि वे भविष्य में दुबारा पनप न पायें। ऐसा प्रत्येक कार्य जो हमें नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाये, 'विमल' श्रेणी का शुद्धिकरण होगा।

तृतीय स्तर तक हम बाह्य अशुद्धियों के उन्मूलन हेतु कार्य कर रहे थे जो 'मल' के अंतर्गत आती है। चतुर्थ से सप्तम स्तर तक हम विकार, अर्थात् आंतरिक अशुद्धियों के क्षेत्र में कार्य करते हैं। पवित्रता के चतुर्थ स्तर को 'शुद्धि' कहते हैं। इस स्तर का तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जहाँ व्यक्ति पवित्रता को प्राप्त करने के लिए अपने प्रयत्नों को तीव्र कर देता है। उदाहरण के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास में पहले 2:2:2:2 के अनुपात से शुरू कर आप उसे धीरे-धीरे 5:5:5:5 तक और फिर 10:10:10:10 की ओर ले जाते हैं। उसी प्रकार आप पवित्रता की अवस्था का विस्तार करने का प्रयास करते

हैं। इसमें आप जितने सफल होते हैं उतने ही नकारात्मक तत्त्व कम होते जाते हैं। भले ही उनका पूरी तरह उन्मूलन न हो, परंतु वे घटते अवश्य जाते हैं।

पवित्रता का पंचम स्तर 'विशुद्धि' कहलाता है जो एक विशिष्ट प्रकार के शुद्धिकरण का संकेत देता है। यही शब्द 'विशुद्धि चक्र' के वर्णन में प्रयुक्त होता है। इस स्तर तक आते-आते आप पवित्रता के सूक्ष्म और विशिष्ट आयामों में प्रवेश कर जाते हैं।

छठे स्तर को 'पवित्र' कहा जाता है जिसका तात्पर्य सात्त्विक समझ से है। इसके पूर्व के स्तर प्रयास थे, लेकिन यह एक अनुभव है। पिछले स्तर नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर बढ़ाये गये कदम थे तो यह उनका परिणाम है, अनुभव है। यह भी रोचक है कि पवित्र शब्द का मूल धातु पावक के समान है। इस प्रकार पवित्र शब्द अग्नि तत्त्व का संकेत देता है। जिस प्रकार अग्नि किसी वस्तु को जलाकर भस्म कर देती है और फिर राख ही शेष बचती है, उसी प्रकार पवित्रता की अवस्था में अपने अंदर के समस्त दुर्गुण और नकारात्मकताएँ जलकर भस्म हो जाती हैं और फिर शुद्ध सार तत्त्व ही शेष रहता है।

पवित्रता की स्थिति में मन की संकल्पशक्ति और समता को कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता। कोई भी आकर कुछ भी कहे, मन अपनी दिशा नहीं बदलता। मन के भीतर से कुछ भी प्रतिक्रिया उभरे पर मन अपने मार्ग पर अविचलित रहता है। शुद्ध अवस्था की निरंतर सजगता ही पवित्रता है।

शुद्धि का अंतिम स्तर 'उज्ज्वल' कहलाता है। यहाँ पहुँच कर व्यक्ति की चेतना पवित्रता के प्रकाश से भर उठती है, समस्त दोषों से मुक्त हो जाती है। यह 'आत्म-शुद्धि' की अवस्था है जहाँ आत्मा का प्रकाश आलोकित रहता है।

ज्ञानयोग में शुद्धि की चर्चा इस उद्देश्य से होती है कि आप आत्म-निरीक्षण के लिए आवश्यक मनोवस्था को समझ सकें। शुद्धि के ये स्तर ज्ञानयोग के मार्ग पर मील के पत्थर हैं जो संकेत देते हैं कि आपने कितना सफर तय कर लिया है और किस प्रकार आप अपने मन को समझते हुए उसका परिष्कार एवं सुधार कर सकते हैं।

समस्त कोषों का शुद्धिकरण

आत्मशुद्धि की अवस्था प्राप्त करने के पूर्व हठयोग के माध्यम से शरीर-शुद्धि की जाती है। फिर राजयोग के अभ्यासों के द्वारा मन की शुद्धि होती है।

प्राणायाम, प्राणविद्या आदि के अभ्यासों की सहायता से प्राणों को नियंत्रित कर प्राण-शुद्धि प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त विज्ञानमय कोष के संस्कारों को निष्कासित किया जाता है, जो विज्ञान-शुद्धि कहलाता है।

प्रत्येक कोष को शुद्धिकरण की प्रक्रिया से ले जाना होता है। इसलिए यह केवल मानसिक अभ्यास ही नहीं, बल्कि शुद्धि के सिद्धान्त को अन्य स्तरों पर भी क्रियान्वित करना होता है। आप केवल षट् रिपुओं से ही नहीं निबटते, बल्कि शरीर, मन, प्राण, चेतना और आत्मा की भी शुद्धि का प्रयास करते हैं। इस प्रकार पवित्रता का प्रवाह शरीर से शुरू होकर आत्मशुद्धि के स्तर तक जाता है।

इसलिए ज्ञानयोग के अभ्यास में 'मैं कौन हूँ' जैसे प्रश्न स्वयं से मत कीजिए। यह ज्ञानयोग नहीं, मनबहलाव है। जैसे बच्चे रात के समय आराम

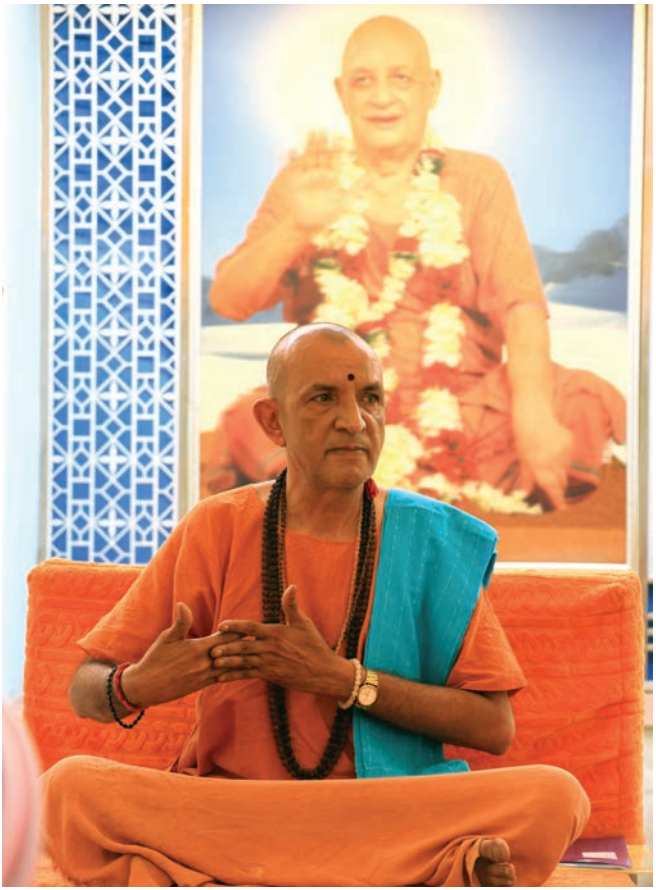

से बिस्तर में कम्बल ओढ़ कर, आँखें बंद कर, कल्पना के घोड़ों की उड़ान भरते हैं और अपने मन की कोई भी इच्छा पूरी कर लेते हैं, तो वास्तव में यह मनगढ़ंत कहानी से अधिक कुछ नहीं होता। वे कल्पना कर सकते हैं कि वे अंतरिक्ष यात्री हैं, विभिन्न ग्रहों तक उड़ान भर सकते हैं, विचित्र प्राणियों से मिल सकते हैं, लेकिन वह केवल कल्पना और कहानी है, वास्तविकता नहीं। उसी प्रकार, 'मैं कौन हूँ? मैं तो दिव्य, प्रकाशमान आत्मा हूँ' ऐसे प्रश्न-उत्तर वयस्क व्यक्तियों की काल्पनिक उड़ानें हैं। जिस तरह एक बच्चे को कल्पना की दुनिया में अंतरिक्ष यात्री बनना पसंद आता है, उसी तरह बड़े लोगों को अपनी कल्पना में परम तत्त्व बनना अच्छा लगता है।

यह तो हर व्यक्ति की कामना होती है कि वह आत्म-साक्षात्कार की परम स्थिति प्राप्त करे, परंतु यह स्वयं से अमूर्त प्रश्न करने और काल्पनिक उड़ानें भरने से प्राप्त नहीं होती है। यह स्थिति जब वास्तव में प्राप्त होती है तो व्यक्ति के शरीर, प्राण, मन, बुद्धि सब झूमने लगते हैं। शरीर के रोम-रोम में हल्कापन और उल्लास भर जाता है। समस्त व्यक्तित्व प्रकाश, ऊर्जा और आनन्द से परिपूर्ण हो उठता है, यहाँ तक कि शारीरिक कोशिकाएँ भी प्रदीप्त हो जाती हैं।

ज्ञानयोग के विषय में यह भ्रांति कृपया दूर कर लीजिए कि इसका तात्पर्य 'मैं कौन हूँ' का प्रश्न करने से है। यह मत तो शुष्क बुद्धिवादियों का है जो सोचते और बोलते तो बहुत हैं, लेकिन किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। ठोस निष्कर्ष पर वही साहसी लोग पहुँचे हैं जिन्होंने अनुभव के पथ पर चलने का जोखिम उठाया है।

ज्ञानयोग के बारे में अन्य भ्रांति यह है कि भक्तियोग एवं कर्मयोग के साधक इस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकते हैं। यह सही नहीं है। ज्ञानयोग तो भोजन में नमक की तरह आवश्यक है। आप चाहे जो कुछ भी पकाइये, हर व्यंजन में थोड़ा बहुत नमक तो छिड़कते ही हैं। उसी तरह जीवन के हर क्षेत्र और साधना में ज्ञान का छिड़काव होना है, केवल 'मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ?' जैसे प्रश्नों में नहीं।

ज्ञानयोग वह योग-मार्ग है जिसके माध्यम से व्यक्ति में मानसिक स्पष्टता, विवेक एवं समझ का विकास होता है। यह ज्ञानयोग का परिणाम है, प्रसाद है। जैसे-जैसे आप अपने मन के स्वभाव को समझते जाते हैं वैसे-वैसे आपको इसे परिवर्तित करने की शक्ति भी प्राप्त होती जाती है।

– 2 नवम्बर 2015, गंगा दर्शन

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

शिष्य धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 91, ISBN: 978-81-86336-96-0

अगस्त 2010 के योगदृष्टि सत्संग कार्यक्रम में स्वामी निरंजनानन्द ने गुरु तत्त्व के निरूपण से प्रारम्भ कर, शिष्यत्व के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला। उनके सारगर्भित शब्द हमें अपने भीतर झाँककर यह जाँचने के लिए मजबूर करते हैं कि शिष्यत्व की कसौटी पर हम कितने खरे उतरते हैं, हमारे व्यक्तित्व में कौन-सी क्षमताएँ और कमियाँ हैं, और कैसे हम एक आदर्श शिष्य के गुणों का अर्जन कर अपना उत्थान कर सकते हैं।

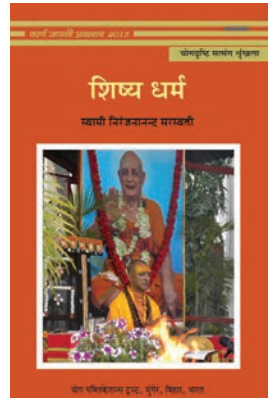

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए) एवं कार्यक्रम

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं
- स्वस्थ जीवन हेतु *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर *यौगिक जीवनशैली साधना* का कार्यक्रम उपलब्ध है

• Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2024

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

फरवरी 11–जुलाई 11	योग चक्र अनुभव
जुलाई 2022–जुलाई 2024	आश्रम जीवन प्रशिक्षण
जुलाई 18–जनवरी 18 2025	योग चक्र अनुभव
सितम्बर 22–30	हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण
सितम्बर 24–30	हठ योग यात्रा 5
अक्टूबर 3–12	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 6–12	राज योग यात्रा 5
अक्टूबर 17–30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण
नवम्बर 3–10	क्रिया योग एवं ज्ञान योग प्रशिक्षण

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

अगस्त 7–अक्टूबर 7	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)

कार्यक्रम

नवम्बर 17–23	मुंगेर योग संगोष्ठी

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ